मासिक पत्रिका, जून २०२३, वर्ष ०७, अंक ०६

मान मन्दिर बरसाना

मूल्य १०/-

०२

रसमण्डप,गह्वरवन में नित्य आराधना, रसिया गायन एवं ब्रजलीलाओं
की सुमधुर प्रस्तुति करती हुई मान मन्दिर की बाल-साध्वियाँ

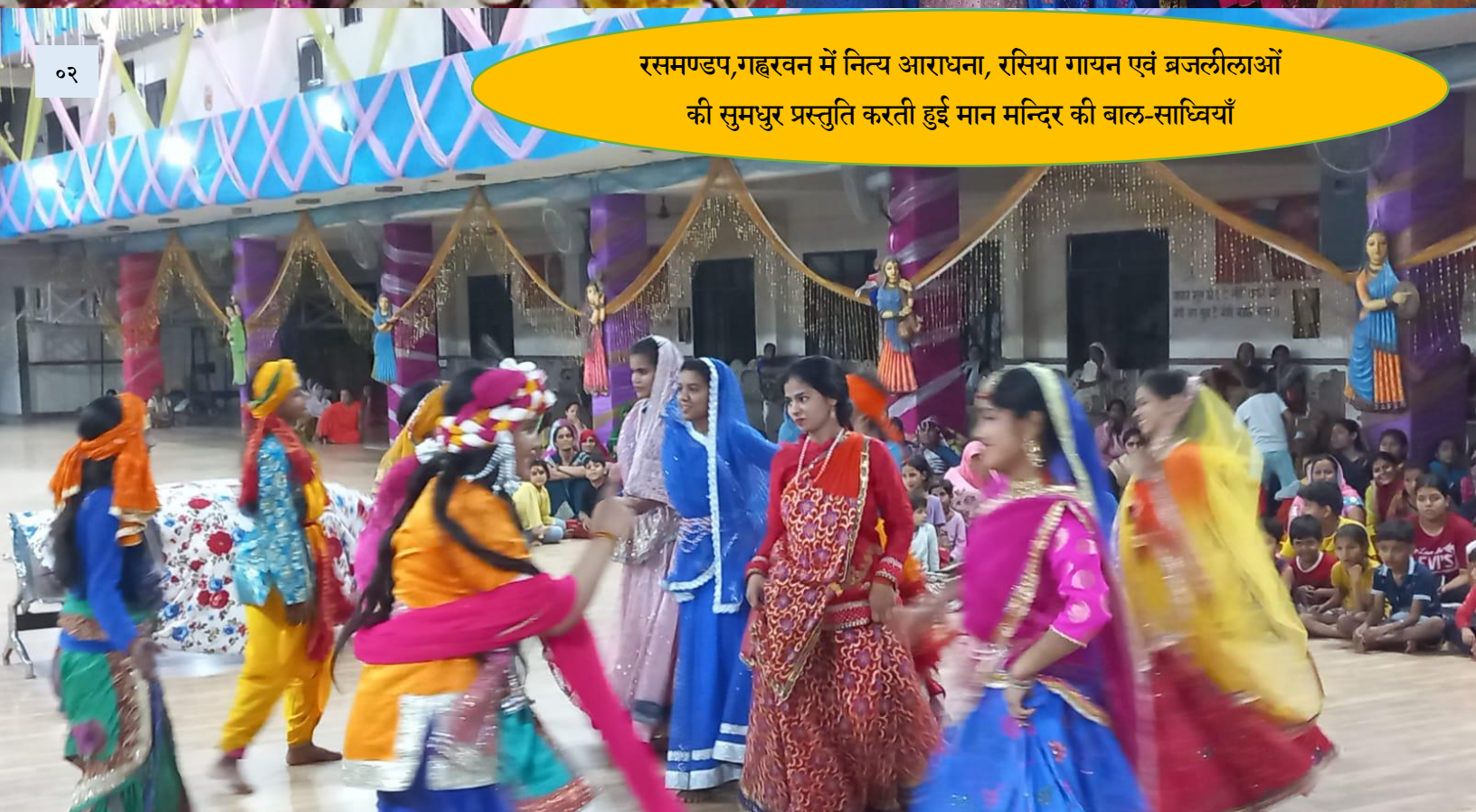

अनुक्रमणिका

विषय- सूची — पृष्ठ- संख्या

१ परम प्रेम-प्रदायिनी 'श्रीब्रजभूमि'.....०५
२ ब्रजवास से अक्षम्य-अपराध विनष्ट.....०९
३ धरा-धाम में नित्य 'श्री-सन्निधि'.....१२
४ श्रीचरणरज-स्मरण से लीला-संप्राप्ति.....१४
५ परमाद्भुत महिमामय 'श्रीधाम'.....१७
६ संत-संग से भक्तिपथ सुगम.....१९
७ धामनिष्ठा से इष्ट-प्राप्ति सहज.....२१
८ 'अवतरित धाम' ही नित्य धामदा.....२३
९ अनन्य भावमयी सुदृढ़ रहनी.....२६
१० 'आराधना' से धाम-शक्ति का जागरण.....२९
११ 'गौ-सेवा' से संस्कृति-संरक्षण.....३२

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो | — *पूज्यश्री बाबामहाराज कृत*

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**
प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**

mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922
(Website :www.maanmandir.org)
(E-mail :info@maanmandir.org)

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –
"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें | हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

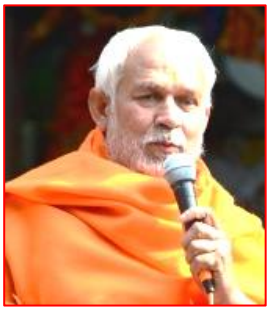

सृष्टि का प्रत्येक जीव, जड़-चेतन कोई क्यों न हो, कहीं न कहीं निश्चय ही सुख की खोज में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देता है; फिर भी उसे परमानन्दमय अनन्त सुख सुलभ नहीं होता । इसका प्रमुख कारण यही है कि जिन वस्तुओं, स्थानों अथवा व्यक्तियों में उसके सुख की कल्पना होती है, वह सर्वथा निरर्थक ही रहती है क्योंकि सुख किसी वस्तु, स्थान अथवा प्राणी में नहीं है अपितु वह इस जगत से कहीं अनन्त दूर, केवल और केवल भगवत्प्रेम में ही सुलभ होगा । उस प्रेमरस की आधारभूता श्रीकृष्ण स्वामिनी 'श्रीराधारानी' हैं । उस परात्पर तत्व 'श्रीराधा' में अनन्य रति हो, तब कहीं उस सुख की अनुभूति हो पाएगी । वे 'श्रीराधा' लावण्य की सार हैं, रस की सार हैं, सुख की सार हैं, करुणा की सार हैं, रूप की सार हैं, चतुरता की सार हैं, समस्त रति-केलियों के विलास की सार हैं । अन्त में कह दिया है कि सृष्टि का जो सम्पूर्ण सार तत्व है, वे उस सार की भी सार हैं –

लावण्यसाररससारसुखैकसारे कारुण्यसारमधुरच्छविरूपसारे ।
वैदग्ध्यसाररतिकेलिविलाससारे राधाभिधे मम मनोऽखिलसारसारे ।। (श्रीराधासुधानिधि - २५)

ऐसी सार सम्पदा 'श्रीराधारानी' के आश्रय के बिना भला किसी जीव को अनन्तानन्त वह दिव्य सुख कैसे मिलेगा ? उन 'श्रीराधारानी' में हमारी रति कैसे हो ? कहते हैं कि धामी से अधिक धाम की महिमा है । श्रीधामसेवी किसी महापुरुष का आश्रय यदि मिल जाए तो धामी स्वतः प्रसन्न हो जाएगा । अनन्यता व निष्ठा के साथ 'श्रीधाम' का सेवन कर लो, श्रीभगवत्प्रेम भी मिल जाएगा और फिर कभी किसी दुःख का भागी ही तुम नहीं बनोगे ।

हमारे गुरुप्रवर पूज्य 'श्रीबाबामहाराज' ने धाम व धामवासी ब्रजवासियों को साक्षात् अपना आराध्य माना और गत् ७० वर्षों से कभी ब्रजवास नहीं छोड़ा । ब्रज की सेवा में सतत् अपने को समर्पित कर रखा है । यही कारण है कि उन्हें कभी दुःख की अनुभूति ही नहीं हुई; यद्यपि वे अस्वस्थ रहते हैं, परन्तु अनन्त सुख का सदैव अनुभव करते रहते हैं; ऐसे महापुरुषों का संग ही जगत् के अनन्त दुःखों से छुटकारा दिलाकर अनन्त सुखों का भाजन हमें बना सकता है, उनकी कृपा से हजारों जीव आज श्रीभगवत्प्रेम की रसधारा में सतत् दिव्यानन्द का अनुभव कर रहे हैं ।

हम भी अपने पाठकों से अनुरोध करते हैं कि लौकिक सुखों की वासना से हटकर दिव्य श्रीभगवत्प्रेम के आस्वादन में सदा डूबे रहें ।

प्रबन्धक
राधाकान्त शास्त्री
श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

परम प्रेम-प्रदायिनी 'श्रीब्रजभूमि'

परमाद्भुत करुणामयी ब्रजेश्वरी 'श्रीराधारानी' की अहैतुकी अनन्त करुणा के परिणामस्वरूप उनके नित्य धाम 'गोलोक' से इस धराधाम पर 'ब्रजभूमि' का अवतरण हुआ । इसी ब्रज में पाँच कोस का वृन्दावन, गिरिराज गोवर्धन एवं यमुनाजी हैं । परम वात्सल्यमयी श्रीजी ने गोलोक धाम से अपने ब्रज-वृन्दावन धाम को पृथ्वी पर इसलिए भेजा ताकि मृत्युलोक के अत्यधिक पतित-पामर एवं दुराचारी प्राणियों का भी इसके आश्रय से सहजता से एवं शीघ्रतापूर्वक कल्याण हो जाए और इन सभी को नित्य धाम की प्राप्ति हो जाए । गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी रामचरितमानस में पृथ्वी पर अवतरित इस धाम की महिमा का वर्णन करते हुए कहा – **चार खानि जग जीव अपारा ।**

अवध तजें तन नहिं संसारा ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड -३५)

चार प्रकार के जीव सृष्टि में होते हैं – जरायुज, अण्डज, स्वेदज एवं उद्भिज्ज; यदि ये जीव भी श्रीधाम में रहते हैं और धाम में ही इनकी मृत्युहोती है तो फिर उनका संसार में पुनर्जन्म नहीं होता है । श्रीराधासुधानिधि के अनुसार –

यत् प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि

तद् वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६५)

यह धाम तो अत्यधिक पतित, पापैकभाजां प्राणी, जो पाप करने के सिवा और कुछ नहीं करते, और कुछ नहीं जानते, उनका केवल कल्याण ही नहीं करता अपितु उनको प्रेमामृतसिन्धु का भी सार, राधा-माधव के दिव्य रस का दान करने वाला है । श्रीधाम की कृपा से सुदुर्लभ 'श्रीसहचरी भाव' महापापी को भी प्राप्त हो जाता है; ऐसी इस ब्रज-वृन्दावन धाम की आश्चर्यजनक दुष्प्रवेश महिमा है । दुष्प्रवेश महिमा का अभिप्राय है कि धाम की ऐसी अगाध महिमा में लोग प्रवेश नहीं कर सकेंगे अर्थात् इस पर विश्वास नहीं करेंगे कि धामवास का ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है । धाम की इस दुष्प्रवेश महिमा में आस्था न रखने वालों का संसार में बहुत बड़ा समुदाय है । साधारण सांसारिक लोग ब्रज धाम की अलौकिक महिमा को न समझ सकें, यह तो उनके लिए स्वाभाविक है परन्तु अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आधुनिक काल में जो लोग समाज में कृष्णभक्ति का उपदेश देते हैं, संसार में कृष्णभक्ति का प्रचार-प्रसार करते हैं, जिनके लाखों की संख्या में शिष्य हैं, लाखों अनुयायी हैं, जो किसी न किसी वैष्णव सम्प्रदाय से जुड़े हुए हैं, ऐसा देखने में आता है कि वे भी ब्रज-वृन्दावन धाम की इस दुष्प्रवेश महिमा में विश्वास नहीं करते हैं और ऐसे लोग अपने अनुयायियों से, अपने शिष्यों से यही कहते हैं कि ब्रज-वृन्दावन धाम में अखण्डवास करने का अधिकार केवल भगवान् के शुद्ध भक्तों को ही है, साधारण लोगों को तो इस धाम का केवल दर्शन करने के लिए ही वहाँ जाना चाहिए, अधिक से अधिक एक सप्ताह तक ही वहाँ वास करना चाहिए, इसके बाद वहाँ से अपने गन्तव्य को चले जाना चाहिए; ब्रजभूमि में अखण्ड निवास का अधिकार साधारण जीवों को नहीं है क्योंकि उनका हृदय विकारों से युक्त होता है, ऐसे दूषित हृदय के लोग यदि ब्रज में अखण्ड वास करेंगे तो उनके द्वारा अपराध होगा और अपराध के कारण उनका पतन हो जाएगा । गम्भीरतापूर्वक वैष्णव-

शास्त्रों और धामनिष्ठ महापुरुषों की वाणी का अध्ययन किया जाए तो उनके द्वारा ऐसे गलत मत का कभी भी प्रचार नहीं किया गया, जैसा कि राधारानी की अनन्त महिमा से भरपूर ग्रन्थ श्रीराधासुधानिधि में तो यहाँ तक कहा गया कि यह अवतरित धाम एकमात्र पापकर्म में ही पूर्णतया डूबे हुए लोगों को भी प्रेमामृतसिन्धु का सार सर्वस्व रस देने वाला है, जिस रस के बारे में श्रुति कहती है –

"रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति ।"

वह परमात्मा 'रस' ही है और उस रस को प्राप्त करके ही यह जीव आनन्दित होता है । महापापी, पूर्णतया पापकर्मों में ही आकण्ठ मग्न डूबे लोगों को भी जो धाम परमानन्द के मूल रस को प्रदान करने वाला है, उस धाम के बारे में ऐसा कहना कि यहाँ अखण्ड वास करने का अधिकार केवल विशुद्ध चित्त भक्तों को ही है, साधारण भक्त या संसारी लोग यदि वहाँ आजीवन वास करते हैं तो चित्त के कालुष्य के कारण उनके द्वारा धाम में अपराध होगा, जिसके परिणामस्वरूप उनका विनाश हो जाएगा; ऐसा विचार धाम की अनन्त महिमा के प्रति उनके अभाव को तो दिखाता ही है, साथ ही यह भी प्रकट करता है कि इन लोगों का अपने ही सम्प्रदाय के मूल आचार्यों की तथा अन्य धामनिष्ठ महापुरुषों की वाणी में एवं वैष्णव-शास्त्रों, आर्ष-ग्रन्थों के प्रति कोई श्रद्धा-विश्वास नहीं है और इस तरह के लोग समाज में 'धर्माचार्य, गुरु, कथावाचक, आध्यात्मिक उपदेष्टा एवं प्रचारक' बनकर वास्तव में ये ही लोग साधारण जनों को अपराध के मार्ग पर अग्रसर करके उन्हें विनाश की ओर ढकेलकर कल्याण के सहज मार्ग से वंचित करने में लगे हुए हैं ।

सर्वप्रथम तो गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य और भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार चैतन्य महाप्रभु के जीवन का अध्ययन करने पर पता पड़ता है कि उनके अवतार का मुख्य प्रयोजन ही ब्रजभक्ति की महिमा के चतुर्दिक प्रचार-प्रसार और स्वयं भी ब्रजरस का आस्वादन करने के लिए हुआ था; उन्होंने अपनी जन्मभूमि नवद्वीप-मायापुर से ही कृष्णभक्ति के प्रचार के साथ ही कृष्णप्रेम की मूल ब्रज-वसुन्धरा की अलौकिक महिमा से भी सबको परिचित कराते हुए कहा था – **राधाकुण्ड श्याम कुण्ड गिरि गोवर्धन ।**

मधुर मधुर वंशी बाजे शेई तो वृन्दावन ॥

उनकी आज्ञा से ही उनके सर्वप्रमुख परिकर जैसे रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, गोपाल भट्ट गोस्वामी एवं रघुनाथदास गोस्वामी ने अखण्ड ब्रजवास करके धाम की सेवा की एवं अपने ग्रन्थों के द्वारा भी ब्रज भक्ति का प्रचार करते हुए सबको ब्रजवास करने के लिए प्रेरित किया । श्रीरूपगोस्वामीजी ने भक्तिरसामृतसिन्धु में लिखा है कि कृष्ण भक्ति के चौंसठ अंगों में भी पाँच अंग मुख्य हैं यथा – नाम जप या कीर्तन, भागवत श्रवण, श्रीविग्रह की सेवा-पूजा, साधु संग और ब्रजवास । इनमें भी ब्रजवास सबसे अधिक सरल होने से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि नाम-जप या कीर्तन चौबीस घंटे अहर्निश नहीं हो सकता है । सोते समय तथा शरीर की क्रिया आहार, शयन और शौच-स्नान आदि के समय अखण्ड नाम ग्रहण में विराम लग जाएगा । इसी प्रकार श्रीविग्रह सेवा, साधु संग एवं भागवत श्रवण में भी सोते समय एवं शरीर की क्रिया के समय विराम लग जाएगा परन्तु ब्रजवास ही एकमात्र ऐसा साधन है कि चाहे

कोई शयन करे तब भी ब्रज में ही शयन करेगा, शारीरिक क्रियायें भी ब्रजभूमि में ही होंगी, जागृत, स्वप्न व सुषुप्ति – ये तीनों अवस्थायें भी ब्रजभूमि के संसर्ग में ही होंगी । इसलिए ब्रजवास कृष्ण भक्ति की प्राप्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सबसे सरल साधन है । इसी प्रकार से 'उपदेशामृत' में भी कृष्ण प्रेम के अभिलाषी साधक को श्री रूप गोस्वामी जी ने अखण्ड ब्रजवास करने की शिक्षा दी है । श्रीचैतन्य महाप्रभु के ही एक अन्य परिकर श्री प्रबोधानन्द जी ने भी महाप्रभु की आज्ञा से अखण्ड ब्रजवास किया और धाम की अद्वितीय महिमा से भरपूर ग्रन्थ वृन्दावन महिमामृत शतक की रचना की । अपने इस ग्रन्थ में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है –

दूरे चैतन्यचरणाः कलिराविर भून्महान् ।
कृष्णप्रेमा कथं प्राप्यो विना वृन्दावने रतिम् ॥

(श्रीवृन्दावनमहिमामृत - ५/१००)

जीवों को मुक्त हस्त से कृष्णप्रेम का वितरण करने वाले श्रीचैतन्यमहाप्रभु अब इस पृथ्वी पर नहीं रहे, उनके श्रीचरणकमल अब हमारी दृष्टि से बहुत दूर हो गये हैं और जीवों को पापकर्मों में फँसाने वाले अति भयंकर कलियुग का प्रभाव दिनोदिन बढ़ता जा रहा है; ऐसी विकट स्थिति में कृष्ण प्रेम की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ? इसको प्राप्त करने का अब केवल एक ही उपाय शेष रह गया है और वह है ब्रजभूमि । राधामाधव के चरणचिह्नों से चिह्नित इस ब्रजभूमि का आश्रय ले लो । यहाँ की त्रिलोकपावनी रज ही जीवों को कृष्णप्रेम का दान करेगी । वृन्दावनशतक में ही एक स्थान पर अत्यन्त प्रबल धामनिष्ठा के बारे में उन्होंने लिखा है – **वृन्दारण्यं त्यजेति प्रवदति यदि कोऽप्यस्य जिह्वां छिनद्मि श्रीमद्वृन्दावनान्मां यदि नयति बलात् कोऽपि तं हन्म्यवश्यम् । कामं वेश्यामुपेयां न खलु परिणयायान्यतो यामि कामं । चौर्यं कुर्यां धनार्थं न तु चलति पदं हन्त वृन्दावनान्मे ॥** (श्रीवृन्दावन शतक २/१५)

यदि कोई वृन्दावन-त्याग की चर्चा भी करेगा तो मैं उसकी जिह्वा काट डालूँगा । बलात् यदि कोई मुझे वृन्दावन के बाहर ले जाएगा तो उसे समाप्त कर डालूँगा । भोगेच्छा होने पर भले ही वेश्या का संग कर लूँगा किन्तु विवाह के लिए ब्रज के बाहर नहीं जाऊँगा । धन के अभाव में चोरी भी कर लूँगा किन्तु वृन्दावन के बाहर एक पग भी नहीं जाऊँगा । इस प्रकार देखा जाए तो श्रीचैतन्यमहाप्रभु और उनके अनुयायी समस्त परिकरों ने जीवों को ब्रजभूमि का आश्रय लेने की शिक्षा दी, उन्होंने कभी भूल से भी ऐसा नहीं कहा कि शुद्ध भक्त ही ब्रजवास करने के अधिकारी हैं और साधारण जन यदि यहाँ वास करेंगे तो उन्हें अपराध लगेगा और इस तरह उनका विनाश हो जाएगा किन्तु आज अपने को उन्हीं के सम्प्रदाय का अनन्य अनुयायी बताने वाले गुरु, उपदेशक और प्रचारक लोग इसी मनगढ़ंत और समाज को दिग्भ्रमित करने वाले मत का सारे संसार में जोर-शोर से प्रचार करने में जुटे हुए हैं कि सर्वसाधारण को अपराध लगने की आशंका से अखण्ड ब्रजवास करने का अधिकार नहीं है । ऐसी कुछ संस्थायें जो इस प्रकार के मत का प्रचार करती हैं, इसके पीछे एक मुख्य कारण यह भी है कि इन्हें अपनी संस्था के द्वारा प्रचार करने के लिए युवा प्रचारकों की अधिक आवश्यकता रहती है, इसलिए इनके आचार्यगण ऐसा कहते हैं कि युवावस्था में ब्रज के बाहर अधिक से अधिक कृष्णभक्ति का प्रचार करना चाहिए और

वृद्धावस्था में अखण्ड ब्रजवास करना चाहिए । किन्तु ऐसा मत भी पूर्णतया अनुचित और समाज का अहित करने वाला है । युवावस्था में किसी को ब्रजवास करने से रोककर उसे केवल बाहर ही प्रचार के लिए लगाये रखा जाए और वृद्धावस्था तक उसे प्रतीक्षा करने दिया जाए तो क्या यह आवश्यक ही है कि वृद्ध होने तक वह जीवित ही रहेगा, यदि वृद्ध होने के पूर्व ही उस भक्त की मृत्यु हो जाए तो क्या होगा और आजकल वैसे भी कलिकाल में मनुष्यों की आयु दिनोदिन कम होती जा रही है । इसलिए ऐसा कहना कि वृद्धावस्था में ब्रजवास करना और युवावस्था में ब्रज के बाहर प्रचार करो – पूरी तरह अव्यवहारिक और शास्त्र व महापुरुषों की आज्ञा के पूर्णतया विरुद्ध है । वैसे भी कृष्ण-भक्ति अथवा कृष्णप्रेम का प्रचार कोई तभी कर सकता है, जिसके हृदय में विषयों की आसक्ति का पूर्णतया अभाव हो और जो स्वयं कृष्ण- भक्ति से भरपूर हो तथा ब्रजभूमि के बारे में तो आचार्य प्रबोधानन्दजी ने स्वयं ही कह दिया है कि कृष्णप्रेम का प्रचार करने वाले श्रीचैतन्यमहाप्रभु अब इस संसार में नहीं हैं, अब तो केवल ब्रजभूमि की दिव्य रज ही जीवों को कृष्णप्रेम प्रदान करेगी । ब्रज क्या है ? सर्वशक्तिमान परमेश्वर की गँवार लीला का केन्द्र ही ब्रज है । **'ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः'** इतना ही नहीं गँवार भी अन्ततोगत्वा गाँव में रहता है, कुछ न कुछ उसके हृदय में ग्रामीण सभ्यता होती है किन्तु ब्रज तो ऐसा स्थल है, जहाँ भगवान् वनचर अर्थात् जंगली बन गया । श्रीमद्भागवत के युगल गीत में ब्रजगोपिकाएं कहती हैं – **अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपुरुष इवाचलभूतिः । वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥** (श्रीभागवतजी १०/३५/८) यह आदिपुरुष 'भगवान्' इस ब्रजभूमि में आकर वनचर बन गया है । जब यह वंशीवादन के द्वारा गायों का आह्वान करता है, उस समय वन की समस्त लताएँ और वृक्ष कृष्णमय बन जाते हैं, उनके रोम-रोम में कृष्ण व्याप्त हो जाते हैं । असंख्य लोग ब्रज में आते हैं और चले जाते हैं किन्तु जिस पर विशेष कृपा होती है, वह इस धाम में निष्ठापूर्वक रहता है और जो इस धाम में निष्ठापूर्वक निवास करता है, उसे अवश्य श्रीजी की प्राप्ति होती है, उसे निश्चित ही श्रीकृष्ण मिलते हैं ।

ब्रजवास से अक्षम्य-अपराध विनष्ट

कृष्णप्रेम-प्रदायिनी 'ब्रजभूमि' की उपेक्षा करके कोई कृष्णप्रेम का प्रचार ही नहीं कर सकता है, यथार्थ रूप में श्रीकृष्ण-प्रेम का उदय तो ब्रजवास से ही हो सकता है । गौड़ीय सम्प्रदाय के षड् गोस्वामियों में श्रीजीवगोस्वामीजी ने एक बार वृन्दावन में लोगों के मुख से यह पद सुना –

"सखी हौं श्याम रंग रँगी ।

देखि बिकाय गयी वह सूरति, मूरति माँहि पगी ।"

'हे सखी ! मैं तो श्यामसुन्दर के रंग में रँग गई हूँ ।' जीवगोस्वामीजी ने पूछा कि इस पद की रचना किसने की तो लोगों ने बताया कि दक्षिण भारत में कावेरी नदी के तट पर वास करने वाले एक परम वैष्णव 'श्रीगदाधरभट्टजी' के द्वारा रचित यह पद है । जीवगोस्वामीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्रजभूमि के आश्रय के बिना ये महानुभाव श्याम-रंग में कैसे रँग गये ? तुरन्त ही उन्होंने दो सन्तों को गदाधरभट्टजी के पास भेजा, उनके द्वारा उन्होंने एक पत्र भी भेजा, उस पत्र में श्रीजीवगोस्वामीजी ने लिखा था –

अनाराध्य राधापदाम्भोजरेणुमनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्कम् । असम्भाष्य तद् भावगम्भीरचित्तान् कुतः श्यामसिन्धोः रसस्यावगाहः ॥

श्रीराधारानी के चरणकमलों की रेणु (रज) की आराधना किये बिना, श्रीजी के चरणचिह्नों से चिह्नित 'श्रीवृन्दावन धाम' का आश्रय लिए बिना तथा श्रीराधारानी के भाव से युक्त गम्भीर चित्त वाले महापुरुषों के सत्संग के बिना कोई श्यामसुन्दर के रस-सिन्धु में अवगाहन कैसे कर सकता है, कृष्ण रंग में कैसे रँग सकता है ? उन सन्तों के द्वारा दिये जीवगोस्वामीजी के पत्र में लिखे कृष्णप्रेम-प्राप्ति के इन प्रबल साधनों के बारे में पढ़कर गदाधरभट्टजी उसी समय दक्षिण भारत से चल दिये और जीवगोस्वामीजी के शरणापन्न होकर उन्होंने आजीवन ब्रजवास किया । इससे पता चलता है कि मुख्य आचार्यों ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन और पालन किया, आज उन्हीं के सम्प्रदाय के उनके अनुयायी लोग उसकी धज्जियाँ उड़ाने में लगे हुए हुए हैं और जनसाधारण को मनमाने शास्त्रहीन विचारों के द्वारा दिग्भ्रमित कर रहे हैं । गौड़ीय सम्प्रदाय के लोगों के द्वारा एक यह भी मत बहुत प्रचारित किया जाता है कि चैतन्य महाप्रभु ने पूरे भारत में कृष्णप्रेम का प्रचार किया और वे अत्यधिक करुणावान् थे, अतः उनकी जन्मभूमि 'नवद्वीप-मायापुर' जहाँ से उन्होंने कृष्ण-संकीर्तन का प्रचार आरम्भ किया, उसका महत्त्व वृन्दावन से कम नहीं है । वृन्दावनवास करते समय अपराध होने के कारण पतन का भय रहता है किन्तु नवद्वीप-मायापुर में अपराधों को गौरांग महाप्रभु के द्वारा क्षमा कर दिया जाता है । गौड़ीय सम्प्रदाय वालों के द्वारा कई वर्ष पूर्व एक पुस्तक प्रकाशित की गयी, उस पुस्तक का नाम था - 'ब्रज के भक्त' । उस पुस्तक में ब्रज में रहने वाले विरक्त सन्तों की जीवनी का वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ में अधिकांशतया गौड़ीय सन्तों के ही चरित्र का वर्णन है । इस ग्रन्थ में ब्रज के एक सिद्ध सन्त के चरित्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि आजीवन ब्रजवास करने के बावजूद भी अपने जीवन के अंतिम समय में वे महात्मा ब्रज को छोड़कर नवद्वीप-मायापुर चले गये और उन्होंने कहा कि ब्रज में अपराध का बहुत विचार है, यहाँ क्षमा नहीं है, इसलिए मैं तो नवद्वीप-मायापुर ही जाऊँगा

क्योंकि निताई-गौर (चैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द महाप्रभु) करुणा के अवतार हैं, वे अपराधों पर ध्यान नहीं देते हैं और सबको क्षमा कर देते हैं । इस तरह का चरित्र लिखकर 'श्रीब्रजधाम' और यहाँ की अधीश्वरी परम करुणामयी 'श्रीराधारानी' की करुणा पर कितना बड़ा कुठाराघात किया है इन साम्प्रदायिक संकीर्णता से ग्रसित लोगों ने । जबकि 'श्रीचैतन्यमहाप्रभु' जीवन भर 'ब्रजभूमि' की महिमा का गायन करते रहे, उन्होंने अपने परिकरों को 'ब्रज की महिमा' से अवगत कराकर, उन सभी को ब्रज में भेजा । श्रीरूप-सनातन इत्यादि षड्गोस्वामियों ने आजीवन ब्रजवास किया और उन्होंने भी अपने ग्रन्थों में 'ब्रजभूमि' की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । इन षड्गोस्वामियों ने अथवा प्रबोधानन्दजी ने अपने 'श्रीवृन्दावनशतक' में कहीं भी नहीं लिखा कि ब्रज में अपराध का बहुत विचार है, यहाँ क्षमा नहीं है तथा श्रीमहाप्रभु के धाम गौड़ देश में बहुत करुणा है, वहाँ अपराध क्षमा कर दिये जाते हैं, इसलिए वहाँ वास करना ब्रजवास से अधिक श्रेष्ठ है । आजकल के ये मनमुखी साम्प्रदायिक लोग अपने आधारहीन मनगढ़न्त विचारों का इस तरह प्रचार करके समाज का कल्याण नहीं अपितु विनाश कर रहे हैं । ब्रजभूमि का आश्रय लेने पर महाभयंकर भक्तापराध और अन्य अक्षम्य अपराध कैसे क्षमा हो जाते हैं, इसके लिए सच्चा प्रमाणिक उदाहरण है महाभारत के पात्र अश्वत्थामा की गाथा का – द्रोणाचार्य का पुत्र 'अश्वत्थामा' दुर्योधन से प्रेम करता था और पाण्डवों से अत्यधिक द्वेष किया करता था । जब महाभारत के युद्ध में कौरवों का नाश हो गया और पाण्डव विजयी हो गये तो वह उनके प्रति द्वेष की अग्नि से जलने लगा । उसने पाण्डवों के वंश का नाश करने के लिए अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ पर भीषण ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया; उत्तरा के गर्भ में बालक परीक्षित था । जब ब्रह्मास्त्र उत्तरा की ओर आया तो अपने गर्भ के बालक की रक्षा के लिए उसने भगवान् 'श्रीकृष्ण' की शरण ग्रहण की । भगवान् ने तुरन्त ही उत्तरा के गर्भ में प्रवेशकर अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से बालक परीक्षित की रक्षा की । किन्तु अश्वत्थामा का यह दुर्दान्त अपराध श्रीकृष्ण सहन नहीं कर सके, उन्होंने अश्वत्थामा से अत्यन्त कुपित होकर कहा – 'तूने गर्भ के असहाय शिशु को मारने के लिए ब्रह्माण्ड का विनाश करने वाले अति भयानक ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, तेरा यह अपराध अक्षम्य है, अतः मैं तुझे शाप देता हूँ कि तेरा शरीर गलित कुष्ठ से ग्रसित हो जाए; तेरा एक-एक अंग दारुण कोढ़ से जर्जरित हो जाएगा और तू इसकी असह्य वेदना से पीड़ित होकर पृथ्वी में भटकता रहेगा ।' अश्वत्थामा को इतना कठोर शाप देने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रकट लीला का संवरण करके नित्य धाम को चले गये । श्रीकृष्ण का शाप तुरन्त ही फलीभूत हुआ और अश्वत्थामा का सारा शरीर दारुण गलित कुष्ठ से ग्रसित हो गया । वह अमर है, मर भी नहीं सकता था । अतः वह भयंकर गलित कुष्ठ की असह्य पीड़ा से पीड़ित होकर पृथ्वी पर भटकने लगा । वह अपने रोग के निवारण के लिए पृथ्वी के समस्त तीर्थों में गया किन्तु उसके कष्ट की निवृत्ति नहीं हो सकी । उसने विचार किया कि जिन्होंने मुझे यह शाप दिया, वे श्रीकृष्ण तो अब इस धराधाम से जा चुके हैं, फिर उसे स्मरण हुआ कि श्रीकृष्ण तो चले गये किन्तु उनका परम उदार, परम माधुर्य रस से परिपूर्ण धाम 'ब्रज' तो पृथ्वी पर ही विद्यमान है । फिर क्या

था, अपने भीषण कष्ट की निवृत्ति के लिए अश्वत्थामा 'ब्रजभूमि' की शरण में आया और बरसाना से छः-सात किलोमीटर दूर स्थित पिपासावन (पिसाया) में आने पर उसका गलित कुष्ठ पूरी तरह समाप्त हो गया और उसका शरीर पूर्ण स्वस्थ हो गया । इस तरह ब्रजधाम के स्पर्श से भगवान् के द्वारा दिया हुआ अत्यन्त भयंकर शाप नष्ट हो गया, उसके अत्यन्त अक्षम्य महद्-अपराध का भी शमन हो गया । आज भी अश्वत्थामा इस पिपासावन में वास कर रहा है; केवल वास ही नहीं कर रहा, बल्कि लगभग २५० बीघा तक विस्तृत इस वन का संरक्षण भी कर रहा है । ब्रज के अधिकतर वनों का नाश हो चुका है किन्तु अश्वत्थामा के संरक्षण के कारण ब्रज का यह महत्वपूर्ण वन (पिपासा वन) पूरी तरह सुरक्षित है । आज भी इस स्थल का यह चमत्कार है कि यदि कोई इस वन की लकड़ी काट दे तो उसके घर में कोई न कोई दुर्घटना अवश्य हो जाती है, उसके परिवार में किसी न किसी की मृत्यु हो जाती है । इस तरह यह पिपासावन इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि 'ब्रजभूमि' का आश्रय लेने वाले के अत्यन्त अक्षम्य और महाविकराल अपराध का भी यहाँ मार्जन हो जाता है ।

इसी प्रकार ब्रह्माजी श्रीकृष्ण की ग्वाल-लीला को देखकर मोह में पड़ गये तो बछड़ों तथा गोपबालकों का हरण करके ले गये, उन्हें मूर्च्छित करके अपने ब्रह्मलोक में एक वर्ष तक रखा । इस तरह उन्होंने एक वर्ष तक भगवान् की रसमयी माधुर्य लीला के सहयोगी भगवान् के भक्तों का एक वर्ष तक उनसे वियोग कराकर अक्षम्य भक्तापराध कर डाला । इसका यह परिणाम हुआ कि भगवान् उनसे प्रसन्न नहीं हुए । अन्त में भगवान् की ही आज्ञा से भक्तापराध के शमन हेतु उन्होंने तीन बार ब्रजभूमि की परिक्रमा की, तब उनका यह अपराध नष्ट हुआ । श्रीमद्भागवत में उल्लेख है – त्रिः परिक्रम्य । सूरसागर में सूरदासजी ने वर्णन किया है कि भगवान् ने ब्रह्माजी को आज्ञा दी – **"ब्रज परिकम्मा करहु देह को पाप नसावाहु ।"** 'ब्रह्माजी ! ब्रजभूमि की परिक्रमा करके अपने शरीर द्वारा किये हुए पाप का नाश करो ।' इसलिए जो लोग आर्ष ग्रन्थों एवं वैष्णव शास्त्रों तथा ब्रजनिष्ठ महापुरुषों की वाणी से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं, वे ही लोग इस तरह की निरर्थक बातें किया करते हैं कि ब्रज में साधारण लोग अधिक दिन तक निवास करेंगे तो अपराध लग जाएगा और इस तरह उनका विनाश हो जाएगा । इसी प्रकार गीताप्रेस से प्रकाशित ग्रन्थ 'श्रीराधामाधव-चिन्तन' में भी ऐसा लेख लिखा है कि वृन्दावनवास के लिए समस्त अनर्थों से मुक्त होने की आवश्यकता है, नहीं तो अनर्थों से युक्त व्यक्ति यदि वृन्दावनवास करेगा तो उसके द्वारा अपराध होने की सम्भावना है और इस तरह उसका पतन हो जायेगा । इस तरह के लेख वास्तविकता के पूर्णतया विपरीत हैं और इनको पढ़ने-सुनने से साधारण व्यक्ति ब्रजवास करने से अपराध के भय से हिचकिचाता है । अतः सभी को केवल मूल आचार्यों की वाणी और ब्रजनिष्ठा पर आधारित प्रामाणिक ग्रन्थों और आर्ष ग्रन्थों को पढ़ना-सुनना चाहिए, जिससे कि 'श्रीब्रजधाम' के प्रति श्रद्धा-विश्वास में वृद्धि हो ।

श्रीकृष्ण स्वतः सिद्ध हैं, हमें केवल उनकी ओर देखना है, वे कहीं बाहर से नहीं आयेंगे-जायेंगे ।

धरा-धाम में नित्य 'श्री-सन्निधि'

श्रीराधासुधानिधि (१० अगस्त, २०२०) से संकलित

श्रीराधासुधानिधि के पहले श्लोक में ग्रन्थकार ने उनकी दिशा को प्रणाम किया, सीधे ही राधारानी तक नहीं गये क्योंकि वे दुर्लभ हैं । वहाँ तक प्रणाम करने का, पहुँचने का हम लोगों का अधिकार नहीं है, इसलिए पहले इष्ट की दुर्लभता बताते हुए प्रथम श्लोक में केवल उनकी दिशा को प्रणाम किया गया, दूसरे श्लोक में उनकी महिमा को प्रणाम किया गया, तीसरे श्लोक में राधारानी की चरणरज का स्मरण किया । इससे ग्रन्थकार इष्ट की दुर्लभता बता रहे हैं; चौथे श्लोक में ग्रन्थकार ने कहा कि श्रीजी की चरण रज का हम स्मरण कर सकते हैं, इसलिए 'अहं' शब्द लगाया - **'तं राधिका चरणरेणुमहं स्मरामि ।'** 'अहं' में अस्मदादि सभी जीव आते हैं । पाँचवें श्लोक में निकुञ्ज देवी की जय बोली गयी है - **'जयति कापि निकुञ्ज देवी'** यहाँ से सगुण-साकार लीला का प्रारम्भ होता है किन्तु जिन श्रीराधारानी को हम लोग इस धाम में देखते हैं, जिस धाम की महिमा सुनते हैं, वह धाम चालीसवें श्लोक में जाकर प्रकट होगा, जब वे वृषभानु भवन में प्रकट होंगी -**'यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानु गेहे'** अवतार इसीलिए होता है; 'अव' माने नीचे, 'तार' माने उतरना, आना । भगवान् अपने नित्य धाम से अवतार लेते हैं, नीचे अर्थात् माया के राज्य में स्थित इस धाम में आते हैं, जिससे हम जैसे साधारण जीव भी उनकी लीला, उनकी महिमा जानकर उनकी शरण में जायें । अवतार के पहले ऐसा नहीं है कि भगवान् नहीं रहते हैं; वे नित्य धाम में रहते हैं । नित्य धाम यहाँ नहीं है । दिखायी देने वाला धाम तो नित्य धाम का अवतार है, प्रकट रूप है । जो साधारण माया के जीव हैं, उनके लिए अवतार होता है । ऐसा सभी का मत है; रामायण, गीता, भागवत आदि का मत है । रामायण में कहा गया है कि प्रभु अवतार लेते हैं और अपनी अवतार लीला का विस्तार करते हैं ।

'सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिन्धु जन हित तनु धरहीं ॥' (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १२२)

रामायण में भगवान् के अवतार लेने का यह हेतु बताया गया है । **'सोई जस गाइ भगत भव तरहीं'** – जिनके यश को गाकर भक्त भवसागर से पार हो जाते हैं । अवतार लेने का और कोई दूसरा कारण नहीं है । इसी तरह से गीता में भी भगवान् ने कहा – मैं अवतार लेता हूँ । **"यदा-यदा हि धर्मस्य....। परित्राणाय साधूनां.....॥"** (गीता ४/७, ८) इसे सभी जानते हैं । अवतार लेने का कारण यही होता है कि भगवान् हम जैसे साधारण जीवों के लिए ग्राह्य हो जाते हैं । भगवान् का अवतार अर्थात् उनकी लीला, उनका नाम, उनका यश इत्यादि जितना भी होता है, वह केवल संसार के जीवों के कल्याण के लिए होता है । उसी तरह सुधानिधि में कहा गया है कि अपने धाम से श्रीजी आयीं –

पूर्णानुरागरसमूर्ति तडिल्लताभम्
ज्योतिः परं भगवतो रतिमद्रहस्यम्
यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानु गेहे
स्यात्किङ्करी भवितुमेव ममाभिलाषः ॥

(श्रीराधासुधानिधि – ४०)

जो पूर्णानुराग रस की मूर्ति हैं, अनेक विद्युत लताओं के समान जिनकी कान्ति है । वह ज्योति भगवान् से आगे की

है, रतिमद्रहस्य है; उसका प्रादुर्भाव बरसाने में वृषभानुजी के घर में होता है, उसकी किंकरी हम लोग बनें, यह अभिलाषा है । यह है सुधानिधि में राधारानी का अवतार । अवतार से पहले भी वे नित्य धाम में विराजती हैं, जहाँ उनकी नित्य लीला चलती है । इसलिए पहले श्लोक में ही, अवतार लेने के पहले जहाँ जिस दिशा में, अव्यक्त धाम में श्रीजी विराजती हैं, उसको नमस्कार किया गया है । दूसरे श्लोक के अनुसार ब्रह्मादि को भी उनके चरण दुर्लभ हैं । अद्भुत वैभव है जिनके चरणों के पराग का, कृपा के कारण जिनकी रस वर्षा होती है, उनकी महिमा को प्रणाम किया गया है । इसके बाद तीसरे श्लोक में जब श्रीजी अवतार लेती हैं तो ग्रन्थकार कहते हैं कि ब्रह्मा, शिव, शुक, नारद आदि जो द्वादश प्रमुख भागवत हैं, उनको भी श्रीजी के चरण-कमल दुर्लभ हैं, उनकी चरण-रज दुर्लभ है, हम उसका स्मरण करते हैं किन्तु अभी वे अपने आपको श्रीजी के स्मरण का अधिकारी नहीं मानते हैं । चौथे श्लोक में ग्रन्थकार कहते हैं – 'चरणरेणुमहं स्मरामि' – 'अहं' शब्द से तात्पर्य है कि हम सभी लोग श्रीजी की चरणरज का स्मरण करते हैं, उनकी चरणरज को प्रणाम करने के योग्य हैं क्योंकि श्रीजी अवतार लेती हैं । अवतार में उनकी चरणरज की महिमा का वर्णन करते हुए पाँचवें श्लोक में उनके दिव्य प्रभाव का वर्णन किया गया है । नन्दलाल का प्राकट्य हो चुका है । अवतार में जब वे प्रकट होते हैं या नित्य धाम में भी जब वे होते हैं तो श्रीजी के दिव्य कन्दर्प के प्रभाव से नित्य लीला में वे मूर्च्छित हो जाते हैं और वहाँ भी दिव्य धाम में 'श्रीजी' श्रीकृष्ण को जीवनदान देने वाली हैं । ऐसी जो निकुञ्ज देवी हैं, उनको प्रणाम किया गया है । छठवें श्लोक में जब श्रीजी का अवतार हुआ था या होता है तो इसीलिए होता है कि अस्मदादि जो जीव हैं, उन पर कृपा करने के लिए होता है । भगवान् अपने धाम से आते हैं या श्रीजी आती हैं तो क्यों आते हैं तो चालीसवें श्लोक में कहा गया – **'यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानु गेहे'** – कृपा से राधारानी आती हैं, कहाँ आती हैं, वृषभानुजी के गेह (मन्दिर) या भवन में । इसलिए अवतार काल के बाद की जितनी भी श्रीजी की लीला गायी गयी है, उसके पहले का जितना भी श्रृंगार रस है, वह नित्य धाम का है । यह श्रृंगार-रस अनादि है, ऐसा नहीं है कि पहले नहीं था । अवतार – अव माने नीचे, तार माने उतरना । भगवान् नीचे उतरते हैं, कहाँ से उतरते हैं, नित्य धाम से उतरते हैं, इसलिए राधारानी जब अवतार लेती हैं तो चालीसवें श्लोक में स्पष्ट कहा गया है – यत्प्रादुरस्ति – 'अस्ति' शब्द का प्रयोग किया गया है । ऐसा नहीं कि श्रीजी अब यहाँ से चली गयी हैं । अवतार लेने के बाद भी वे यहाँ सदा रहती हैं । ऐसा नहीं समझना चाहिए कि अवतार इस धाम से अब चला गया । अवतार काल के बाद भी श्रीजी इस धाम में रहती हैं, इसीलिए 'अस्ति' शब्द को जोड़ा गया है अर्थात् श्रीजी का प्रादुर्भाव कृपा से सदा रहता है । वे काल के बन्धन में नहीं हैं कि अब आपको यहाँ से जाना पड़ेगा । वे यहाँ नित्य विराजमान हैं, इसलिए राधासुधानिधि के श्लोक-४० में 'यत्प्रादुरस्ति कृपया' कहा गया है, यह उनकी कृपा है । वे वृषभानुजी के भवन में सदा विराजती हैं ।

"बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार"

श्रीचरणरज-स्मरण से लीला-संप्राप्ति

श्रीराधासुधानिधि के टीकाकारों ने 'वृषभानु' का अर्थ किया है – 'वृष' माने धर्म, कौन-सा धर्म, निकुञ्ज धर्म, जहाँ सदा लीला चलती रहती है नित्य धाम की, उसके जो प्रकाशक हैं, प्राकट्यकर्ता हैं, वही वृषभानु सूर्य वंश से सम्बन्धित हैं । ब्रज प्रेमानन्द सागर और लाड़ सागर में चाचा वृन्दावनदासजी ने अत्यन्त विस्तार से उनकी वंशावली का वर्णन किया है । वृषभानुजी का वही परिकर श्रीजी के प्रकट होने पर यहाँ अवतार लेता है । भगवान् या श्रीजी जब अवतार लेते हैं तो अकेले नहीं आते हैं, श्रीजी की नित्य सहचरियाँ भी उनके साथ आती हैं, वे सदा उनके साथ रहती हैं । नित्य धाम में अपनी सहचरियों, अपने परिकरों के साथ श्यामा-श्याम की लीला अनादिकाल से होती आ रही है । इसलिए अवतार के पहले भी राधासुधानिधि के श्लोक १ से ४० तक जिस श्रृंगार रस का वर्णन किया गया, वह इसलिए किया गया कि ऐसा नहीं है कि लीला अभी-अभी, नयी-नयी चली है, वह लीला सदा से चलती रहती है । यह अवश्य है कि वह लीला ब्रह्मा, शिव आदि को भी दुर्लभ है । यह ग्रन्थकार ने तीसरे श्लोक में ही कह दिया है –

यो ब्रह्मरुद्रशुकनारदभीष्ममुख्यै-

रालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य ।

उन श्रीकृष्ण को वश में करने वाली श्रीराधारानी की अनन्त शक्ति युक्त चरणरेणु है, उसका हम स्मरण करते हैं । उसको अभी प्रणाम कैसे कर सकते हैं, स्मरण कर सकते हैं क्योंकि अभी वह प्राप्त नहीं है । फिर उसको स्मरण करने के लिए दिव्य लीलायें हैं, जो नित्य धाम से चलती हैं और सदा चलती ही रहती हैं, उनको ग्रन्थकार श्लोक - ३९ तक कहेंगे; उसके बाद श्लोक - ४० में वृषभानु भवन में श्रीजी का प्राकट्य होता है और उनकी जन्म आदि लीलायें चलती हैं । श्लोक - ३९ के अनुसार ब्रह्मा आदि भी जिनकी गति नहीं जानते हैं, वे निकुञ्ज धर्म के प्रकाशक 'वृषभानु' यहाँ (ब्रजभूमि में) भी आते हैं और राधारानी उनकी कन्या बनती हैं । उनका कैंकर्य हमें जन्म-जन्म तक, अनेक जन्मों तक प्राप्त होता रहे । इसके पहले नित्य धाम का श्रृंगार, नित्य धाम की लीला इसीलिए गायी गयी ताकि हम लोग यह न समझें कि राधारानी का अवतार अभी हुआ है, इसके पहले नहीं हुआ था । यह हम लोग सोच सकते हैं क्योंकि मायिक जीव हैं । हमें पता नहीं कि जन्म के पहले हम कहाँ थे और मृत्यु के बाद कहाँ रहेंगे, इसका कुछ पता नहीं है । त्रैकालिक ज्ञान हमें नहीं है । भगवान् की लीलाओं का त्रैकालिक ज्ञान जीव को हो भी नहीं सकता है । कृपा से हो सकता है । इसीलिए श्लोक-३९ के पहले जितनी भी लीलायें हैं, वे नित्य धाम की लीलायें हैं और नित्य धाम में भी श्रीकृष्ण दुर्लभ बताये गये हैं । सुधानिधि के प्रथम श्लोक में इसीलिए उनका नाम मधुसूदन कहा गया है । 'मधुसूदन' माने मधु दैत्य को मारने वाले भगवान् नहीं । मधु-कैटभ तो प्रलय के बाद सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए थे । तब भगवान् ने उनका वध किया था । दिव्य धाम में 'मधु' वह है, जब श्रृंगार-रस में राधारानी के साथ भगवान् का विहार होता है, उस मधु के जो आस्वादक हैं, उनको 'मधुसूदन' कहा गया है । जिनकी गति, जिनका ज्ञान योगीन्द्रों के लिए भी दुर्लभ है । योगीन्द्र साधारण योगी नहीं हैं, ब्रह्मा-शिवादि योगीन्द्र हैं; अवतार काल में भगवान् जो रूप धारण करते हैं, वे भी इस

नित्य धाम को नहीं जान सकते । ऐसे मधुसूदन भी, नित्य धाम में जब श्रीजी क्रीड़ा करती हैं तो उनके वसन (वस्त्र) के आँचल के खेल में उठी हुई हवा से ही अपने को कृतार्थ मानते हैं । अनादिकाल से राधामाधव का विहार हो रहा है, अनादिकाल से नित्य विहारी श्रीजी के अधीन हैं । नित्य धाम में ऐसी लीला होती रहती है । इसके बाद अवतार-काल में भी ब्रह्मा-शिव आदि जो योगीन्द्र हैं, वे भी अवतार-काल में जिनके दुर्लभ चरणों को नहीं पा सकते हैं, ऐसी वृषभानुनन्दिनी, नित्य धर्म प्रकाशक 'वृषभानु' क्योंकि उनसे उत्पन्न होने वाली सभी लीलायें अनादि हैं, उनकी महिमा को ग्रन्थकार ने नमस्कार किया । इसके बाद अवतारकाल में ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी जो श्रीकृष्ण दुर्लभ हैं । इसी तरह भागवत में भीष्म आदि द्वादश भक्ति के आचार्य बताये गये हैं, उनके लिए भी जो श्रीकृष्ण दुर्लभ हैं, उनको भी तत्काल ही वश में करने वाली अनन्त शक्तियों वाली श्रीराधारानी की चरण-रज का मैं स्मरण करता हूँ । (ऐसा ग्रन्थकार ने तीसरे श्लोक में कहा है) चौथे श्लोक में राधारानी की चरणरज को प्रणाम करते हैं । लीला नित्य है, इसी बात को दिखाने के लिए पाँचवाँ श्लोक आता है, जिसमें बताया गया है कि नित्य धाम में भी श्रीकृष्ण के लिए राधारानी बड़ी दुर्लभ हैं । उनके विरह से सभी लीलायें नित्य हैं । नित्य धाम में भी लीलायें होती रहती हैं और वहाँ भी जब श्रीजी लीला के लिए कृष्ण से नहीं मिल पायीं तो लीलायें तो सब तरह की होती हैं । विरह की, मिलन की सभी लीलायें नित्य हैं । राधासुधानिधि में जो कोटि कन्दर्प का उल्लेख किया गया, वह कन्दर्प या काम प्राकृत नहीं है । नित्य धाम में जो लीलायें होती हैं, वे सब श्रीकृष्ण रूप हैं, राधा रूप हैं । उस कोटि कन्दर्प से मूर्च्छित नन्दलाल को जीवन दान देने वाली निकुञ्ज देवी हैं ।

नन्द भी नित्य लीला में अवतार लेते हैं, इसे पुराणों में बताया गया है कि सभी परिकर आता है, अवतार लेता है; नन्दलाल भी आते हैं । यहाँ भी प्रकट लीला में भगवान् का पिता कौन बनेगा ? भगवान् अनादि हैं तो पिता भी अनादि बनेगा । अनादि परिकर का ही कोई पिता बन सकता है । नन्द-यशोदा आदि सब नित्य परिकर ही प्रकट लीला में अवतरित होते हैं और इस तरह यहाँ लीला चलती है । हम लोगों के समझने के लिए पाँचवें श्लोक में नन्दसूनु (नन्दलाल) शब्द का प्रयोग किया गया, उनको जीवनदान देने वाली निकुञ्जदेवी हैं । संजीवनी-बूटी का प्रभाव सभी जानते हैं । रामावतार में मेघनाद ने लक्ष्मणजी पर शक्ति का आघात किया था । लक्ष्मणजी ईश्वर हैं, चतुर्व्यूह में हैं किन्तु शक्ति के प्रहार से वे मूर्च्छित हो गये । हनुमान जी गये और संजीवनी को लाये । उनके अतिरिक्त अन्य कोई संजीवनी बूटी नहीं ला सकता था । हिमालय स्थित द्रोणगिरि पर्वत से हनुमानजी संजीवनी बूटी लाये । उसका उपयोग साधारण वैद्य नहीं जानता था । देवलोक से धन्वन्तरिजी लंका में आये थे । रावण ने सभी देवताओं को लंका में बन्दी बना लिया था, उन सबको पराधीन बना लिया था, इसलिए सुषेन वैद्य लंका में रावण के शासन के अधीन होकर रहते थे, वहाँ से जा नहीं सकते थे । उनके बिना संजीवनी बूटी का उपयोग कोई नहीं जानता था । हनुमानजी लंका गये और सुषेण को उनके भवन सहित उठा लाये । रामजी के पास आये तो विभीषण ने सुषेण को समझाया, तब संजीवनी बूटी लक्ष्मणजी को देने का उनका

साहस हुआ क्योंकि रावण का सारा समाज उसके अधीन था । विभीषणजी के कहने से सुषेण वैद्य ने लक्ष्मणजी को संजीवनी बूटी पिलायी, इससे लक्ष्मण जो ईश्वर रूप हैं, चतुर्व्यूह में हैं, वे जीवित हो गये । नित्य धाम में भी लीला चलती है तो वहाँ प्राकृत करोड़ों काम से भी अधिक जो दिव्य काम है अनादि काल का, उससे श्रीकृष्ण मूर्च्छित हो जाते हैं । उनको जीवन दान देने के लिए संजीवनी लेने कौन जाएगा ? संजीवनी है कहाँ ? नित्य धाम में लंका तो हो नहीं सकती और न वहाँ सुषेण वैद्य पहुँच सकते हैं । वहाँ तो श्रीजी का अङ्ग-सङ्ग ही संजीवनी है, वे ही आती हैं और नन्दलाल को निजाङ्ग सङ्ग से अमृत पिलाती हैं । ऐसी वे निकुञ्ज देवी हैं, इसलिए पाँचवें श्लोक में निकुञ्ज लीला शब्द का प्रयोग किया गया । ये है सुधानिधि का क्रम ।

अवतार लेने के बाद श्रीजी का प्रयोजन था हम लोगों पर कृपा करना । इसलिए हम लोग उनकी प्रार्थना करें, उनकी उपासना करें । कैसे करेंगे ? किंकरी भाव से उनके दर्शन की इच्छा करें तब राधानन अर्थात् श्रीजी का मुख प्रकट होगा, यह छठवें श्लोक में बताया गया है । सातवें श्लोक में वृषभानुजी जो निकुञ्ज धर्म के प्रकाशक हैं, उनकी जो कन्या बनती हैं राधारानी, उनके केलि भवन की मार्जनी बनने की इच्छा ग्रन्थकार ने प्रकट किया । इसीलिए आचार्यों ने 'वृष' का अर्थ 'धर्म' किया है और वर्तमान में भी 'वृष' का अर्थ धर्म होता है । वृषभानुजी उसके प्रकाशक हैं । इसके बाद समस्या आयी कि नित्य धाम तो यहाँ है नहीं और हम लोग इस प्राकृत धाम में हैं । यहाँ नित्य धाम न है और न सम्भव है । इसके लिए ग्रन्थकार ने आठवें श्लोक में कहा कि तुम सभी साधनों को छोड़ दो, सभी महापुरुषों को, महत् साधनों को छोड़ दो । यहाँ जो तुमको प्राकृत धाम प्रतीत होता है, जहाँ हम लोग बैठे हैं, यहाँ मिट्टी, पानी, पेड़-पौधों आदि से प्राकृत भाव हटाओ । 'वृन्दानिसर्वमहतामपहाय' – 'अपहाय' का अर्थ है बिलकुल छोड़ दो । इस प्राकृत दिखायी देने वाले धाम के लिए जितने भी धर्म हैं, जितने भी लोग हैं, सभी महापुरुषों को छोड़ दो । यद्यपि आचार्यगण भी इस प्राकृत धाम में प्रकट होते हैं, परन्तु ग्रन्थकार आठवें श्लोक में कहते हैं कि सभी महापुरुषों को छोड़ दो । महत् वृन्दों को छोड़ दो । सर्वमहताम् का अर्थ है कि जितने भी महत् वृन्द हैं, उन सबको छोड़ दो । इस धाम का अवतार हुआ है, यह बात प्रबोधानन्दजी ने वृन्दावन महिमामृत शतक में विस्तार से लिखी है । शतक इसीलिए पढ़ा जाता है । वर्तमान में शतक के १९-२० भाग ही उपलब्ध हैं । प्रबोधानन्दजी ने तो ज्यादा लिखे थे किन्तु जितने भी उपलब्ध हैं, हम लोगों के समझने के लिए उतने छप चुके हैं और वृन्दावन में मिलते भी हैं । उसमें यह बताया गया है कि प्राकृत धाम वालों को नित्य धाम की प्राप्ति भावना-शक्ति अर्थात् सुदृढ़ श्रीधाम-निष्ठा से सहज ही हो जाती है ।

ध्यान, भगवान् के श्रीचरणों से शुरू करो और मुखकमल तक जाओ कि प्रभु मुस्कुरा रहे हैं, यहाँ तक पहुँच जाओ । यदि कहें कि अब इसके आगे चलो तो आगे चल ही नहीं पाओगे, उनकी मुस्कान के प्रभाव से ही तुम्हारा सब कुछ हर लिया जाएगा ।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA,
GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd
A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN,
MOB. NO. – 9927916699

परमाद्भुत महिमामय 'श्रीधाम'

श्रीधाम की महिमा को श्रीराधासुधानिधि ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार श्लोक संख्या – २६४ में बताएँगे । आश्चर्यजनक महिमा है श्लोक २६४-२६५ में । श्लोक २६४ में बताया गया है कि इस प्राकृत धाम के आश्रय से परम स्वाराध्य की प्राप्ति होती है । यहाँ जो अत्यन्त क्रूर हैं, पापी हैं, ऐसा अपराधी है, जो देखने एवं बोलने योग्य भी नहीं है, उनमें भी आराध्य बुद्धि रखो । यह कठिन बात है किन्तु इतना तो कसौटी पार करना ही पड़ेगा ।

ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्च ये ।
सर्वान् वस्तुतयानिरीक्ष्यपरमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६४)

ऐसे क्रूर, ऐसे पापी, जो देखने व बात करने योग्य भी नहीं हैं, किन्तु उनको उसी रूप में देखकर भी तुम उनमें परम स्वाराध्य बुद्धि करो, फिर तुमको उस दिव्य वस्तु की प्राप्ति हो जायेगी । क्या प्राप्त हो जाएगी, इसे ग्रन्थकार श्लोक – २६५ में कहते हैं – **यद् राधापदकिङ्करीकृतहृदां सम्यग्भवेद् गोचरं ध्येयं नैव कदापि यद् धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः । यत् प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि तद् वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु ॥**

(श्रीराधासुधानिधि – २६५)

यह अवश्य है कि राधारानी की कृपा हुई है तभी हम लोग यहाँ आये हैं, नहीं तो हम लोग इसका (इस धाम का) ध्यान भी नहीं कर सकते, इसका नाम भी नहीं ले सकते हैं । हम लोग तो राधारानी का नाम लेने के भी अधिकारी नहीं हैं । इस बात को राधासुधानिधिकार ने श्लोक-२६० में कहा है –

क्वासौ राधा निगमपदवीदूरगा कुत्र चासौ
कृष्णस्तस्याः कुचमुकुलयोरन्तरैकान्तवासः ।
क्वाहं तुच्छः परममधमः प्राण्यहो गर्ह्यकर्मा
यत् तन् नाम स्फुरति महिमा एष वृन्दावनस्य ॥

कहाँ तो राधारानी, जो वेदों को भी प्राप्त नहीं होती हैं तथा कृष्ण तो और भी अधिक दुर्लभ हैं । वे नित्य धाम में श्रृंगार लीला में श्रीजी के श्रीस्तनों के भीतर निवास करते हैं और कहाँ हम लोग, जो परम अधम, अत्यन्त नीच से नीच हैं, क्यों, अपने निन्दित कर्मों के कारण । हम लोग राधा नाम, कृष्ण नाम लेने के भी अधिकारी नहीं हैं परन्तु हमारे मुख से जो नाम निकल रहा है, यह धाम की महिमा है ।

इस तरह से धाम के बारे में बताया गया और फिर हम लोग धाम के बारे में भावना करेंगे, कल्पना करेंगे । कल्पना शब्द को महात्मा लोग भावना कहते हैं । साधारण जीवों के समझने के लिए साहित्य में कल्पना शब्द का प्रयोग किया जाता है । इसी को साधक के लिए भावना बताया गया । भावना करो, क्या भावना करो, राधारानी की किंकरी बनने की भावना करो । इसे सातवें श्लोक में कहा गया है । किंकरी, पुल्लिंग-स्त्री लिंग (स्त्री-पुरुष) से अलग है । इसी बात को गौड़ीय आचार्यों ने प्रकट किया । लीला में जो श्रीजी की दासियों का रूप है, वह ऐसा लगता है कि स्त्रीरूप है किन्तु वह स्त्री-पुरुष से परे की बातें हैं । श्रीजी की दासता के लिए जो रूप मिलता है, उसको किंकरी कहते हैं । अनादि काल की यह मर्यादा है, नित्य धाम में श्रीकृष्ण विहार कर रहे हैं । उपनिषदों में लिखा है कि एक ही ज्योति दो रूपों में बनी । राधा-माधव दोनों एक ही हैं । जब ज्योति के दो रूप हुए तो नित्य लीला चली । उसमें जितनी दासियाँ थीं, वे सहचरियाँ बनीं । उस नित्य लीला में न किसी का

प्रवेश है, न अधिकार है । 'एकज्ज्योति द्विधा भूत्' - उपनिषदों में मन्त्र प्रकट किया गया है कि एक ही दिव्य ज्योति दो रूप धारण करती है – एक राधा और एक कृष्ण; यह सब उपनिषदों में सांकेतिक शैली से, गुप्त शैली से बताया गया है । इसी को ग्रन्थकार आगे श्लोक १० में कहते हैं कि राधारानी का वही पूर्ण रूप, जो एक तत्त्व दो रूप बना था, उन्हीं राधारानी की नखचन्द्र की एक-एक किरणें एक-एक गोपी बनती गयीं । इस तरह से लीला का मूल चलता है । यत्पादपद्म .....(श्रीराधासुधानिधि - १०)

यहाँ भी इस संसार में धाम प्रकट होता है, क्यों प्रकट होता है, इसे वृन्दावन शतक में बताया गया है कि धाम कृपा से प्रकट होता है । कृपा करने के लिए धाम पृथ्वी पर आया और प्राकृत रूप बन गया, उसी प्रकार जैसे यहाँ पेड़, मिट्टी आदि के रूप में परिणत हो गया; यह शतक में लिखा है । शतक को प्रबोधानन्दजी ने प्रकट किया था और आगे चलकर इसी बात पर विवाद हुआ क्योंकि गौड़ीय सम्प्रदाय के लोग उन्हीं को श्रीराधासुधानिधि का लेखक मानते हैं । इस पर बड़ा झगड़ा चला राधावल्लभीय और गौड़ीय सम्प्रदायानुयायियों के बीच । यह व्यर्थ की लड़ाई है । मेरे गुरुदेव पूज्य श्रीप्रियाशरणबाबामहाराज ने मुझसे कहा था कि तुम इन साम्प्रदायिक विवाद में मत पड़ना । तुम तो इनसे अलग हो । गौड़ीय भक्त कहते हैं कि श्रीराधासुधानिधि को हमारे आचार्य ने प्रकट किया तथा राधावल्लभीय कहते हैं कि इसे हमारे आचार्य ने प्रकट किया है । ब्रज में मेरे आने से पहले इस विवाद को लेकर अंग्रेजों के समय में अदालत में मुकदमा चला था । एक राधावल्लभीय सन्त, जो पहले पहलवान भी थे, उन्होंने अदालत में ही गौड़ीय सम्प्रदाय के गवाह बंगाली वैष्णव की अपने साम्प्रदायिक पक्ष के कारण दाँत से नाक काट ली थी । इस प्रकार साम्प्रदायिक द्वेष अदालत तक में प्रकट हुआ । उसके बाद भी दोनों सम्प्रदायों के बीच सुधानिधि को लेकर विवाद चलता रहा, अब भी कुछ न कुछ चल ही रहा है । मेरे गुरुदेव ने मुझसे कह दिया था कि तुम इस विवाद से अलग हो जाओ । इन साम्प्रदायिक प्रपञ्चों में तुम मत जाना । गुरुदेव श्रीप्रियाशरणजी महाराज श्रीसुधानिधि की कथा कहते थे परन्तु वे इसके लेखक का नाम न लेकर उनके लिए 'ग्रन्थकार' शब्द का प्रयोग करते थे । वे अपने समय के अत्यधिक प्रसिद्ध कथावाचक थे । अब तो वे नित्य धाम गमन कर चुके हैं ।

सबसे पहले मनुष्य को धाम महिमा जाननी चाहिए, अवश्य ही जाननी चाहिए क्योंकि बिना धाम में भावना किये कुछ प्राप्ति नहीं होगी और इसलिए भी धाम की महिमा जानना आवश्यक है क्योंकि राधारानी और श्रीकृष्ण की लीलायें यहाँ हुई हैं । हम सभी लोग इसीलिए धाम की शरण में आये हैं तथा धाम के निवास के लिए बहुत से लोग अपने-अपने घर-द्वार और सभी कुछ छोड़कर प्रभु की शरण में आये हैं । इस धाम में जन्म होना, इस धाम की प्राप्ति होना, यह केवल राधारानी की कृपा से ही सम्भव है ।

"यदा संहरते.....(श्रीगीताजी २/५२) कछुआ जैसे अपने अंगों को समेट लेता है, जहाँ बाहर खतरा आया, कछुआ अपने हाथ-पाँव और मुख को सिकोड़कर खोपटे के भीतर ले लेता है, उसका खोपटा इतना मजबूत होता है कि कोई उसे खा नहीं सकता फिर यदि कछुआ समुद्र के भीतर भी है, वहाँ हजारों खाने वाले जीव हैं लेकिन वे उसे खा नहीं सकते क्योंकि उसके अंग प्रतिष्ठित हो गए । इसी तरह जब मनुष्य अंतर्मुख हो गया तो उसकी इन्द्रियों की वृत्तियाँ भी अंतर्मुखी हो गयीं ।

संत-संग से भक्तिपथ सुगम

बाबाश्री के सत्संग (१ जनवरी, २०१७) से संकलित

हम लोग जिस मार्ग पर चल रहे हैं, चले तो नहीं हैं, चलाये गये हैं । भगवान् की कृपा ने चलाया है, इस मार्ग पर चल कौन सकता है, जीव नहीं चल सकता ।

अति हरि कृपा जाहि पर होई ।
पाँय देइ एहि मारग सोई ॥

भगवान् की जब अति कृपा होती है, तब मनुष्य इस मार्ग पर पाँव रखता है; इस मार्ग पर चलना तो बड़ा कठिन है । उपनिषदों में कहा गया है – **"उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ।"** उठो, जागो, श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाओ और उनसे ज्ञान प्राप्त करो, फिर तुम इस मार्ग पर चल सकोगे क्योंकि जैसे छुरे की धार पर चलना कठिन काम है, वैसे ही परमार्थ के मार्ग पर चलना छुरे की धार पर चलना है । उपनिषद् के इसी श्लोक की तरह श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि अध्यात्म अथवा भक्ति के इस मार्ग में अनेक बाधायें आती हैं । कोई भजन करने चलता है तो देवता लोग निश्चित बाधा करते हैं, कोई सही रास्ते पर चल रहा है तो देवगण बाधा उत्पन्न करते हैं । कैसे करते हैं ? भोग भेज देते हैं, स्त्री भेज देते हैं । इन्द्र ने अनेक बार अप्सराओं को भेजा –

कुयोगिनो ये विहितान्तरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ।

(श्रीभागवतजी ११/२८/२९)

कुयोगी लोग अन्तराय (बाधाओं) से नष्ट हो जाते हैं । त्रिदश का अर्थ है – 'देवता'; तैंतीस करोड़ देवता हैं, ये साधक के पास बाधा उत्पन्न करने के लिए मनुष्यों को भेज देते हैं । मनुष्यों में भी सेठों को भेज देते हैं, स्त्रियों को भेज देते हैं और फिर साधक लोभ और काम-भोग के कारण नष्ट हो जाता है ।

अब जब देवता लोग बाधायें उपस्थित करते हैं तो उनसे कौन लड़ेगा, कौन उनको जीतेगा ?

कान्श्चिन्ममानुध्यानेन नामसङ्कीर्तनादिभिः ।
योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥

(श्रीभागवतजी ११/२८/४०)

यह वही श्लोक है, जिसके समान श्लोक वेदमन्त्र में भी कहा गया है । वरान्निबोधत – श्रेष्ठ महापुरुषों की शरण में रहोगे तो नहीं गिरोगे । श्रेष्ठ महापुरुष अर्थात् भक्त, जो नाम संकीर्तनादि में लगे हुए हैं, ऐसे योगेश्वरों की अनुवृत्ति से अशुभों को तुम नष्ट कर दोगे, नहीं तो अशुभ स्वयं तुमको ही नष्ट कर देंगे । अशुभ माने ऐसी परिस्थितियाँ, जो समाज में अशुभ मानी जाती हैं । धन भी अशुभ है । ये परिस्थितियाँ तुमको उसमें फँसा देंगी । अशुभदाञ्छनैः – तुम इन अशुभों को मार डालोगे, यह शक्ति कैसे आएगी, योगेश्वरों की अनुवृत्ति से । यही बात वेद मन्त्र में भी कही गयी है – **उत्तिष्ठ जाग्रत .....** उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों की शरण में जाओ क्योंकि छुरे की धार पर चलना है । अकेले तुम नहीं चल पाओगे । श्रेष्ठ पुरुषों का सहारा ले लो, तब तुम चल पाओगे, पार उतर जाओगे, नहीं तो गिर जाओगे । यही बात भागवत में भी कही गयी है – **'योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः'** योगेश्वरों की अनुवृत्ति रहेगी तो चल पाओगे, नहीं तो गिर जाओगे

क्योंकि देवता लोग भेज देते हैं स्त्रियों को, सेठों को । मनुष्य स्त्री पाकर काम से नष्ट हो जाता है और रजोगुणी सेठों को पाकर लोभ में मर जाता है । ये दोनों ही देवताओं के द्वारा भेजे जाते हैं । जितने भी व्यास (कथावाचक) हैं, धर्माचार्य हैं, ये देवताओं द्वारा भेजी गयी बाधाओं से नष्ट हो जाते हैं; इसी बात को बार-बार कहा गया है । अगर तुम ईमानदारी से चलोगे तो देवता लोग बार-बार तुम्हारे लिए बाधाओं को भेजेंगे । श्रीभागवतजी में इस बात को श्लोक ११/२८/२९ में भगवान् ने कहा है और ११/४/१० में योगेश्वरों ने कहा है – **त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौकौ विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते । नान्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान् धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥**

(श्रीभागवतजी ११/४/१०)

भक्त जाएगा भगवान् के धाम को । भगवान् का धाम देवताओं के लोकों के ऊपर है । देवता लोग जब देखते हैं कि यह मनुष्य तो हमसे ऊपर के लोक में जा रहा है, तब वे बहुत से विघ्न, बहुत से अन्तराय (बाधायें) भेज देते हैं ।

कलियुग में कबीरदासजी के पास स्वर्ग से अप्सरा आई थी, जबकि कलियुग में स्वर्ग से अप्सरा नहीं आती है किन्तु कबीरदासजी के पास आयी थी । तब उन्होंने यह पद गाया – **तुम घर जाओ मेरी बहना, यहाँ तिहारो लेना न देना; राम बिना विष लागे नैना ।** कबीरदासजी ने उस अप्सरा से कहा कि बिना राम (प्रभु) के तुम्हारे नेत्र विष लग रहे हैं । तुम मेरे सामने से चली जाओ । देवताओं ने अप्सरा को भेजा था, क्यों भेजा था ? इसलिए भेजा था क्योंकि उन्होंने देखा कि कबीर 'भगवान्' के धाम में जाने वाला है । "त्वां सेवतां..... ।" (भा.११/४/१०) भगवान् यदि अविता (रक्षक) हैं तो बच जाएगा, नहीं तो मनुष्य बच नहीं पायेगा । यह बात बार-बार कही गयी है ।

देवताओं ने भी भागवत में गर्भ स्तुति के प्रसंग में कहा है – **तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः । त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥** (श्रीभागवतजी १०/२/३३)

हे माधव ! तावकाः यानी जो तुम्हारा हो गया है, वह कभी भी नष्ट नहीं होता, मार्ग से गिरता नहीं है क्योंकि 'बद्धसौहृदाः' – उसका प्रेम तुममें बँधा रहता है । तुमसे अभिगुप्त (रक्षित) होकर वह निर्भय घूमता है । विघ्नों के सेनापतियों के सिर पर पाँव रखकर भक्त घूमता है –

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥

(श्रीभागवतजी १०/२/३२)

जिसमें भक्ति नहीं है, वह अपने आपको मुक्त मानने लगता है क्योंकि उसमें अहं भाव आ जाता है । आपमें और आपके भक्तों में उसका भाव नष्ट हो जाता है । अविशुद्ध बुद्धि हो जाती है । इसलिए सच्चे संतों की सतत् सन्निधि जीवन में अति आवश्यक है, जिनकी परम पावनकारी वाणी के सुनने व मनन-चिन्तन करने से सहज ही विशुद्ध भक्तिपथ का अनुगमन होने लगता है और जीव का परम कल्याण हो जाता है; उसके भक्ति-प्रभाव से पिछली कई पीढ़ियों का भी उद्धार हो जाता है ।

वास्तविक जीना तो यही है कि नामकीर्तन करते हुए जियें, इसका नाम जीवन है ।

धामनिष्ठा से इष्ट-प्राप्ति सहज

बाबाश्री के पदगान (१९ दिसम्बर, २०१९) से संकलित

एक धामनिष्ठ व्यक्ति को, उपासक को धाम में ही अखण्ड निवास करना चाहिए । यही विश्वास उसको भगवद्धाम की प्राप्ति कराता है और नित्य विहार की प्राप्ति कराता है । इस बात को नारदजी ने पद्म पुराणोक्त भागवत माहात्म्य में कहा है, जब साक्षात् मूर्तिमती भक्ति कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात होते हुए वृन्दावन पहुँची । इन सब स्थानों पर भ्रमण करने पर भक्ति बूढ़ी हो गयी थी और वृन्दावन धाम में पहुँचकर वही वृद्धा भक्ति तरुणी (युवती) बन गयी और उसे देखकर स्वयं नारदजी ने कहा –

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा ।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥

(श्रीभागवत-माहात्म्य १/६१)

यह आश्चर्य है कि एक बूढ़ी स्त्री, जिसको मैंने देखा था, अब युवती बन गयी है । ऐसा क्यों हुआ ? यह धाम धन्य है ।

यद्यपि धाम का जो प्राकृत रूप है, यहाँ की मिट्टी है, यहाँ के वृक्ष हैं, वे वैसे के वैसे ही हैं । वे हमको दिव्य नहीं दिखायी पड़ रहे हैं किन्तु इस दिखायी देने वाले धाम का बहुत अधिक महत्त्व है, यह धाम तुमको दिव्य दिखायी पड़ेगा, जब तुम विश्वासपूर्वक इसका सेवन करोगे । यह बात मैं केवल पुस्तक पढ़कर ही नहीं कह रहा हूँ, कुछ-कुछ मुझको अनुभव भी हुआ । चार-पाँच बार डॉक्टरों ने मुझको लिखकर दिया था कि अब आपका बचना मुश्किल है किन्तु विचित्र लीला हुई, न केवल मैं बच गया, बल्कि अब कथा भी कह रहा हूँ, गा भी रहा हूँ । यह धाम का प्रत्यक्ष चमत्कार है और इसी बात को नारदजी कहते हैं –

धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ।

यहाँ भक्ति साक्षात् नृत्य करती है । भक्ति देवी ने स्वयं नारदजी से कहा – **वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ।**
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥

(श्रीभागवत-माहात्म्य १/५०)

इसी बात से इस सिद्धान्त को प्रतिपादन करने के लिए महावाणी का यह पद है ।

यही है यही है भूलि भरमो न कोय,
भूलि भरमे ते भव भटकि मरिहौ ।

इस ब्रज वृन्दावन धाम के प्रति यदि संशय किया तो तुम निश्चय ही संसार में भटकते रहोगे ।

लाड़ली-लाल के नित्य सुखसार बिन,
कौन बिधि वार ते पार परिहौ ॥

हे मानव ! इस धाम के आश्रय के बिना तुम भव में भटकते रहोगे । भवसागर को पार नहीं कर पाओगे । इसलिए –

एक अनन्य की टेक उर में धरौ,
परिहरौ भर्म ज्यों फूल-फरिहौ ।

धाम के आश्रय से फूलोगे-फलोगे । फलना माने फलों की प्राप्ति होगी, ठाकुर-श्रीजी का दर्शन होगा, उनकी लीला की प्राप्ति होगी । फूलना-फलना का यह भाव है । फूलना-फलना का यह भाव नहीं है कि पैसा मिलेगा, माया मिलेगी । इसी बात को इस पद की चौथी कड़ी में खोल दिया गया है कि तुम्हें क्या मिलेगा ?

श्रीहरिप्रिया के परम पद पास ही,
आशु अनिवास ही वास करिहौ ।

परम पद अर्थात् नित्य धाम की तुम्हें प्राप्ति होगी, इसलिए अनन्य बन जाओ और उसकी टेक हृदय में धारण कर लो । टेक माने सारा संसार छूट जाये और यहाँ तक कि सब भगवद्धाम भी छोड़ दो । इसी धाम में रहते हुए प्रभु से याचना करो – **अहो बिधना तोपै अचरा पसार माँगौ,**

जनम-जनम दीजै मोहि याहि ब्रज बसिबौ ।

हे प्रभो ! हमारा आगे जहाँ भी जन्म हो, इसी ब्रज में हो, जो दिखायी पड़ रहा है । यह लगता है प्राकृत किन्तु है नहीं । हे प्रभो ! इसी ब्रज में हमें जन्म देना ।

अहीर की जाति समीप नन्द घर,

घरी-घरी स्याम हेरि-हेरि हँसिवो ।

नन्दगाँव में हमें अहीर बनाना, नन्दघर के पास में, जिससे उठते-बैठते हमें श्यामसुन्दर के दर्शन होंगे और मैं देखूँगा कि हे कृष्ण ! तुम दही का दान ले रहे हो । इन ब्रज की गलियों में दान लेने के समय तुम ब्रजगोपियों को पकड़कर झकझोरते हो, उनके अंगों को स्पर्श करते हो ।

छीतस्वामी गिरधारी विट्ठलेश वपुधारी

शरद रैनि रस रास को बिलसिवौ ॥

यह ब्रज उपासना महावाणी में सिद्धान्त सुख के पाँचवें अध्याय में गाई गयी है । इसका तात्पर्य यह है कि इसी ब्रज में रहकर के उपासना करो, आराधना करो और तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा । कहीं ऊपर जाने की कल्पना मत करना । पुराणों में वर्णन मिलता है – भू, भुवः, स्वः, जनः, तप आदि लोकों का । इन लोकों के ऊपर सत्य लोक है । सत्य लोक के ऊपर विरजा नदी का वर्णन मिलता है । विरजा नदी के बाद भगवद्धाम शुरू होते हैं । ये सब सिद्धान्त सही हैं । यह बात विज्ञान से भी प्रमाणित हो चुकी है । हमारे धर्म में वाणियों में, शास्त्रों में जो कुछ भी लिखा है, सब सत्य है । इसीलिए भागवत में यह लीला वर्णित है कि ग्वालबालों ने एक बार नन्दघाट में स्नान किया, उसके बाद श्रीकृष्ण उनको वरुण लोक ले गये । ये सब बातें सही हैं क्योंकि –

'यही है यही है भूलि भरमो न कोई' भ्रम में मत पड़ो । अगर भ्रम में पड़ोगे तो **'भूलि भरमे ते भव भटकि मरिहौ ।'** अगर भ्रम में पड़ जाओगे तो भवसागर में भटक-भटककर मर जाओगे । इसलिए इस विश्वास के साथ धाम में वास करो । बड़े-बड़े ब्रजनिष्ठ महापुरुष जितने भी हुए हैं चाहे गौड़ीय, वल्लभकुलीय, निम्बार्की, हरिवंशी अथवा हरिदासी हों, वे अनन्य निष्ठा और विश्वास के साथ ब्रज में रहे । **'एक अनन्य की टेक उर में धरौ'** टेक – हम धाम में रहते हैं, यही परम पद है । **"श्रीहरिप्रिया के परम पद पास ही, आशु अनिवास ही वास करिहौ ॥"** परम पद अर्थात् सर्वोच्च स्थान, 'अनिवास' – यह शब्द कठिन है, इसको समझना कठिन है । जैसे तुम प्राकृत स्थानों कलकत्ता, बम्बई आदि में निवास करोगे तो वहाँ माया है, वहाँ वास करने का कोई फल नहीं मिलेगा । धाम में रहने और यहाँ उपासना करने से कल्याण होने में विलम्ब नहीं लगता है । अनिवास माने यहाँ रहने पर भी माया तुमको नहीं छू पाएगी, यहाँ रहते हुए भी तुम अनिवास अर्थात् माया में लिप्त नहीं होगे ।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च । यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।। (श्रीगीताजी ३/३८)

कितनी भी प्रज्वलित 'अग्नि' है लेकिन धुआँ उसको ढक देता है अथवा 'शीशा' कितना भी बढ़िया है, मैल उसको ढक देता है । इसी प्रकार गर्भ के ऊपर झिल्ली ढकी रहती है, यद्यपि गर्भ हिलता-डुलता है, चेतनामय है फिर भी मुर्दा-सा बना रहता है । उसी तरह मनुष्य का 'ज्ञान' काम से ढक जाता है ।

'अवतरित धाम' ही नित्य धामदा

लोग ऐसा भ्रम उत्पन्न कर देते हैं कि नित्य धाम अलग है, ऊपर है । इसीलिए भागवत में रासपञ्चाध्यायी से पहले यह लीला गाई गयी, जिसके बारे में गोविन्द स्वामीजी ने कहा – **'कहा करैं वैकुण्ठहि जाय'** हम लोग जो संसार के अनेक तीर्थों और स्थानों में घूमते हैं, उनकी महापुरुषों की इस वाणी में संवेदनशीलता नहीं है । हरिराम व्यासजी ने इसका खण्डन किया है – **'भटकत फिरत गौड़ गुजरात'** इस ब्रज के बाहर गौड़, गुजरात आदि प्रदेशों में जाना केवल भटकना है । जो कुछ भी मिलेगा, इसी धाम के आश्रय से मिलेगा क्योंकि यहाँ एक ऐसी शक्ति है, जो धाम में अन्तर्हित है; ऐसा विश्वास रखना चाहिए । गोविन्द स्वामी जी कहते हैं – **कहा करैं वैकुण्ठहि जाय ।**

जहाँ नहीं वंशी वट यमुना, गिरि गोवर्धन नन्द की गाय ॥

यही गिरिराज, जिसकी शिलायें हमें पत्थर की दिखायी देती हैं, शास्त्रों में उन्हीं गिरिराजजी के वास्तविक रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनकी शिलायें मणिमय हैं, उनके तीर्थ मणिमय हैं; यह सब हमें कृपा से ही दिखायी पड़ेगा । **'जहाँ नहीं यह कुञ्ज लता द्रुम' 'जहाँ नहीं वंशी वट यमुना'** यमुनाजी का वास्तविक रूप हमें दिखायी नहीं दे रहा है, बदल गया है, इसीलिए लोगों की श्रद्धा नहीं रहती है किन्तु उपासना करो, स्वरूप प्रकट हो जायेगा । उपासना से ही वास्तविक स्वरूप दिखायी पड़ता है । **"गिरि गोवर्धन नन्द की गाय ।"** जब श्रीजी की कृपा होती है तो जो गायें हमें प्राकृत दिखायी पड़ती हैं, इन्हीं की सेवा से दिव्य वृन्दावन, दिव्य धाम दिखायी पड़ेगा । आस्था होनी चाहिए, विश्वास होना चाहिए । विश्वास नहीं है क्योंकि हम लोग संसार के सुखों में आसक्त हैं, पैसा-धेला, रुपया-पैसा, भोग आदि में आसक्त हैं, इसीलिए दिव्य धाम का न दर्शन होता है, न कृपा है । **"जहाँ नहीं यह कुञ्ज लता द्रुम, मन्द सुगन्ध बहत नहिं वाय ।"** काल की एक विचित्र स्थिति है, जिसके कारण धाम का बाहरी स्वरूप बदल रहा है । ६०-७० साल पहले जब हम ब्रज में आये थे तो गह्वरवन में 'अरनी' नामक पौधे की सुगन्ध से पूरा वन सारी रात महकता था । अब इस अवधि के दौरान 'अरनी' का पौधा ही गायब हो गया । विश्वास भी नहीं है हम लोगों को, जबकि इसी ब्रज के बारे में महापुरुषों ने केवल लिखा ही नहीं है अपितु अपनी आँखों से भी सब देखा है, अनुभव किया है । **"कोकिल हंस मोर नहिं कूजत, ताको बसिबो काहि सुहाय ।"** हम (बाबाश्री) जब ब्रज में आये तो ब्रजवासियों से सुना था –

राधाकुण्ड कृष्ण कुण्ड गिरि गोवर्धन ।

मधुर मधुर बंसी बाजे, शेई तो वृन्दावन ॥

चैतन्य चरितामृत में लिखा है कि जब चैतन्य महाप्रभु ब्रज में आये, यहाँ घूमे तो उन्होंने देखा कि सैकड़ों हिरन जा रहे हैं, वृन्दावन का जो यथार्थ स्वरूप है, वह उन्हें दिखायी पड़ा । रास्ते में एक सरोवर में पागल हाथियों का झुण्ड स्नान कर रहा था । पागल हाथी तो एक ही पर्याप्त होता है । चैतन्य महाप्रभु के साथ उनका सेवक था – गोविन्द । उसने कहा – 'प्रभो ! हाथियों से बचकर चलिए ।' महाप्रभु तो स्वयं श्रीकृष्ण थे । वह जानते थे कि इनसे बचना क्या ? इनमें विश्वास करना चाहिए । धाम की बाधाओं में मर जाओ किन्तु अपना विश्वास मत खोना । महाप्रभु ने सरोवर में प्रवेश किया और सामने से पागल हाथियों का झुण्ड आ

रहा था । महाप्रभु ने सरोवर में स्नान किया, वे तो उन्माद में रहते थे, उन्होंने पागल हाथियों पर जल का छींटा मारा । छींटे के पड़ते ही वे पागल हाथी कृष्ण-प्रेम में पागल हो गये । यद्यपि श्रीवृन्दावनमहिमामृतम् में लिखा है –

दूरे चैतन्यचरणाः कलिराविरभून्महान् ।
कृष्णप्रेमा कथं प्राप्यो विना वृन्दावने रतिम् ॥

(श्रीप्रबोधानन्दजी)

जीवों को मुक्त हस्त से कृष्णप्रेम का वितरण करने वाले श्रीचैतन्य महाप्रभु अब इस जगत में नहीं हैं और संसार में कलियुग अपने विकराल स्वरूप में दिनोदिन बढ़ता जा रहा है, ऐसे में ब्रजरज के सेवन के बिना कृष्ण प्रेम की प्राप्ति असम्भव है । वैकुण्ठ में वृन्दावन धाम के माधुर्य रस के नितान्त अभाव से दुःखी ब्रजवासी गोविन्द स्वामीजी के शब्दों में आगे कहते हैं – "**जहाँ नहिं बंसी धुन बाजत, कृष्ण न पुरवत अधर लगाय ।**" जब श्रीकृष्ण वंशी बजाते हैं तो भागवत में शुकदेवजी कहते हैं – **इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।** (श्रीभागवतजी १०/२१/६) श्यामसुन्दर की वंशी समस्त प्राणियों के मन का हरण कर लेती है । इस वंशी का प्रभाव जड़-चेतन सब जगह दिखायी पड़ा । एक तरफ तो यह बताया गया कि इसी धाम में तुमको वंशी ध्वनि सुनाई पड़ेगी और उसका प्रभाव दिखायी पड़ेगा, वह क्या है ? '**प्रेम पुलक रोमांच न उपजत**' वंशी ध्वनि सुनने वाली गोपियों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं । उनके सारे शरीर में प्रेम के सात्विक भावों का उदय हो जाता है । "**मन वच क्रम आवत नहिं धाय ।**" गोपियाँ वंशी ध्वनि सुनकर दौड़ती हुई आ रही हैं, मन से आ रही हैं, वाणी से आ रही हैं और शरीर से आ रही हैं । ऐसा ब्रजवास यदि कोई करे तो अवश्य प्रभु आ जायेंगे किन्तु ऐसा हम लोग कर नहीं पाते हैं । मन इधर-उधर जाता है, वाणी से व्यर्थ की बातें होती हैं । इस पद में कृष्ण प्राप्ति का मार्ग बताया गया है । **"जहाँ नहीं यह भुवि वृन्दावन, बाबा नन्द यशोमति माय ।"** यहाँ उस वृन्दावन की बात नहीं कही जा रही है, जिसका यश पुराणों में गाया गया है, जो समस्त धामों से ऊपर, गोलोक का वृन्दावन है । इस पद में बताया गया है कि इसी पृथ्वी पर जो धाम का अवतार हुआ है, यहीं अगर तुम भजन करो और इसी धाम के प्रति निष्ठा करो, प्रेम करो तो तुमको यहीं सब कुछ मिलेगा । 'भुवि' माने पृथ्वी पर धाम का अवतार होता है । ये तुम्हें दिखायी नहीं पड़ रहा है तो मत दिखायी पड़े, लेकिन श्रद्धा व निष्ठापूर्वक रहो, अवश्य अनुभव होगा । **"गोविन्द तजि प्रभु नन्द सुवन को, ब्रज तजि वहाँ मेरी बसै बलाय ।"** गोविन्द स्वामीजी कहते हैं कि उस धाम वैकुण्ठ में मेरे ख़राब दिन चले जाएँ, ख़राब ग्रह चले जाएँ, वहाँ रहें किन्तु मैं वैकुण्ठ में नहीं जाऊँगा । 'नन्दसुवन' यानी नन्दलाल और वृषभानुनन्दिनी को छोड़कर मेरे अशुभ दिन, अशुभ ग्रह दिव्य धाम में चले जाएँ, जो इस ब्रह्माण्ड से अलग है । पृथ्वी पर जिस धाम का अवतार हुआ है, मैं तो वहीं रहूँगा । अब तो राकेट के द्वारा विज्ञान ने भी दिखा दिया है कि ऊपर लोक हैं । जैसे अमेरिका का रॉकेट चन्द्रमा पर गया था, यद्यपि हमारे पुराणों के अनुसार वह चन्द्रलोक नहीं है, जिसका आधुनिक विज्ञान द्वारा वर्णन किया गया है किन्तु चन्द्रमा पर आधुनिक मानव जो गया, वह उसका केवल जाना ही जाना था और कुछ नहीं किया इन लोगों ने । वहाँ मनुष्य ने देखा कि चन्द्रमा पर पहाड़ है । एक अलग ही

संसार वहाँ दिखायी पड़ा और उन लोगों ने प्रयत्न किया वहाँ का चित्र पृथ्वी पर भेजने का तथा वहाँ का रहस्य जानने का परन्तु कोई जान नहीं पाया क्योंकि मनुष्य के पास दृष्टि ही नहीं है । उस समय मैं पढ़ता था, जब यह समाचार सुना कि मनुष्य चन्द्रमा पर चला गया । उन लोगों का वहाँ का अनुभव मैंने पढ़ा था किन्तु इन लोगों के पास दिव्य दृष्टि ही नहीं है, इसलिए इनको ऊपर कुछ दिखायी ही नहीं पड़ सकता और इस तरह मनुष्य चन्द्रमा से वापस आ गया । अब भी लोग चन्द्रमा और आकाश के अन्य रहस्यों को जानने का प्रयास कर रहे हैं किन्तु इससे कुछ नहीं होगा ।

ब्रजगोपियों ने भागवत में गोपीगीत गाया, उन्होंने कहा – **जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि । दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥** (श्रीभागवतजी १०/३१/१)

इसी ब्रज में महालक्ष्मी ने वैकुण्ठ छोड़कर आश्रय लिया, क्यों लिया, इसकी आशा में आश्रय लिया । हे गोपाल ! हम गोपियाँ इसी ब्रज में तुम्हें ढूँढ रही हैं । तुम्हारे लिए ही हमने अपने प्राणों को धारण कर रखा है । 'गोपी प्रेम धुजा' – प्रेम की ध्वजास्वरूपा इन ब्रजदेवियों जैसा गान, उनके जैसी प्रीति हम लोगों में कहाँ है ? फिर भी इस ब्रजधाम, राधारानी के बरसाना धाम में रहने से, सर्वतोभावेन यहाँ का आश्रय लेने से साँकरीखोर की 'दानलीला' एक दिन दिखायी देगी तथा यहीं रहने से 'महारास' की भी प्राप्ति होगी । श्रीराधासुधानिधिकार कहते हैं –

यद् वृन्दावनमात्रगोचरमहो यन्न श्रुतीकं शिरो –
प्यारोढुं क्षमते न यच्छिवशुकादीनां तु यद् ध्यानगम् ।
यत् प्रेमामृतमाधुरीरसमयं यन्नित्यकैशोरकम्
तद् रूपं परिवेष्टुमेव नयनं लीलायमानं मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि - ७६)

जिन राधारानी की अन्तरंग लीलायें रास-महारास आदि केवल ब्रज वृन्दावन धाम में ही होती हैं । श्रुतियाँ जिन श्रीजी की महिमा को अपने मस्तक पर धारण करने में असमर्थ हैं । शिव, सनकादिक आदि को ध्यान में भी जो तत्त्व दिखायी नहीं देता है, जो धाम केवल पापपरायण लोगों को भी अमृत का समुद्र भगवान् की लीलाओं को दे देता है, ऐसा जो उदार धाम है, वहाँ जो नित्य किशोर अवस्था से युक्त है, उस रूप को देखने की हमारी लालसायें बढ़ती जा रही हैं । इसी बात को वल्लभ सम्प्रदाय में अष्ट छाप के सन्त कवि छीतस्वामीजी ने कहा है –

अहो विधना तोपै अँचरा पसारि माँगौ,
जनम जनम दीजै मोहि याही ब्रज बसिबो ।

याही माने यही ब्रज जो दिखायी पड़ रहा है, ब्रज का दिव्य रूप तो दिखायी नहीं पड़ रहा है । प्राकृत रूप ही दिखायी पड़ रहा है । इसमें शंका नहीं करो, यही धाम तुमको वहाँ पहुँचायेगा । हे दीनबन्धु, हे गोपाल ! इसी ब्रज में हमें जन्म मिल जाये ।

व्यथित होने की आवश्यकता नहीं, ये महापुरुष जिस मार्ग का सृजन करते हुए गये हैं, न स्खलेन्न पतेदिह – आरूढ़ हो जाओ उस मार्ग पर, जहाँ न स्खलन का भय है, न पतन का ही फिर हम जैसे भ्रांत परिश्रान्त पथिकों के लिए इन महापुरुषों का देदीप्यमान जीवन-चरित्र ही तो निर्भ्रान्त पथ-प्रदर्शक है ।

अनन्य भावमयी सुदृढ़ रहनी

बाबाश्री की संध्याकालीन-आराधना (२० दिसम्बर, २०१९) से संकलित

जिस महारास की युगों से प्रतीक्षा की जा रही थी, जिस महारास की उपासना ब्रह्म-शिवादि भी करते थे, जिस महारास को पाने के लिए महादेवजी ने गोपी शरीर धारण किया, जिस महारास के दर्शन के लिए लक्ष्मी भी तरसती रहीं और आज तक बेलवन में तपस्या कर रही हैं, उस रास-विलास की (ब्रजवास करने पर) सहज में प्राप्ति हो जायेगी । इस तरह से महापुरुषों ने धाम की प्राप्ति की इच्छा अपने इष्ट से प्रकट की । यह वही ब्रजभूमि है, जिसके पाने के बाद, ऐश्वर्य का परिपूर्णतम विकास जहाँ वैकुण्ठ आदि धाम में है, वे भी सारहीन मालूम पड़ते हैं । उस वैकुण्ठ में जाकर हम क्या करेंगे ? "**कहा करैं वैकुण्ठहि जाय ।**" यहाँ के रसिक ब्रजवासी द्वारका, मथुरा भी नहीं गये । अन्य पुराणों में यद्यपि किसी बहाने से उनका वहाँ जाने का वर्णन किया गया है किन्तु श्रीमद्भागवत में ऐसा वर्णन नहीं है । ऐश्वर्यमयी लीलाओं का ब्रज-वृन्दावन में प्रवेश नहीं है । यह ब्रज ऐसा है, जहाँ श्रीकृष्ण ने वंशी और मयूरपंख के अलावा किसी शस्त्र को धारण नहीं किया, ऐसा पवित्र धाम है यह । नागरीदासजी कहते हैं – **"हमारो मुरली वारो श्याम ।"** किसी ने कहा कि तुम अपने श्याम की पहचान कुछ और बताते हो । कृष्णलीला तो मथुरा और द्वारका में भी हुई है, वही कृष्ण हैं, फिर तुम वंशी वाले को ही अपना क्यों कहते हो ? इस प्रश्न के उत्तर में ब्रज के रसिक नागरीदासजी बोले – 'तुम नहीं समझ सकते हो । बिना मुरली और मयूर-चन्द्रिका के हम उन कृष्ण को पहचानते भी नहीं हैं, जो सुदर्शन चक्र धारण करते हैं ।'

"बिन मुरली वनमाल चन्द्रिका, नहिं पहचानत नाम ।"

महावाणी में धाम की महिमा के प्रतिपादक पद में कहा गया है – "**एक अनन्य की टेक उर में धरो**" अनन्य माने केवल धाम का निवास कर लो, यही मौज है । टेक रख लो कि हम धाम नहीं छोड़ेंगे । कहना पड़ता है, राधारानी की दया है, सैकड़ों लड़कियाँ (आराधिकाएँ) मानमन्दिर में रह रही हैं, सैकड़ों विद्यार्थी और सन्त यहाँ रह रहे हैं, इस निष्ठा के साथ रह रहे हैं । यदि निष्ठा नहीं है, तब भी संग से आ जाती है, भाव है तो निष्ठा आ ही जायेगी, शरीर तुम्हारा चाहे किसी भी परिस्थिति से बाहर जाता है, निष्ठा हृदय में रहती है । **"परिहरौ भर्म ज्यों फूल-फरिहौ"** फूलोगे-फलोगे और एक दिन नित्य लीला में पहुँच जाओगे ।

"श्रीहरिप्रिया के परम पद पास ही,
आशु अनिवास ही वास करिहौ ।"

आशु माने बहुत जल्दी, अनिवास जो धाम है, अनिवास क्यों कहा ? निवास करने पर अनेक दोष आ जाते हैं, अभाव हो जाता है या प्राकृत भाव होने से प्राकृत भावनायें आती हैं किन्तु जब वहाँ (धाम में) रहोगे तो अवश्य ही धाम की महिमा सुनोगे, उससे तुम्हारा प्राकृत भाव दूर हो जाएगा और निश्चित ही तुमको वास मिलेगा । बहुत जल्दी तुमको नित्य धाम की प्राप्ति होगी । अनिवास माने जहाँ निवास करने पर मायिक बन्धन नहीं लगते हैं, उसको अनिवास कहते हैं । एक-एक शब्द बड़े महत्त्व के हैं । अन्य जगह जाओगे, दौड़ोगे, उपासना करोगे तो कुछ नहीं मिलेगा । यहीं (धाम में) रहो, यहीं उपासना करो; 'आशु' का इतना

अर्थ होता है । 'अनिवास' का अर्थ यह हुआ कि जहाँ रहने से माया का संक्रमण नहीं होता है, दिव्य भावनाओं की प्राप्ति होती है, इसको 'अनिवास' कहते हैं । 'आशु' माने शीघ्र ही तुमको उस नित्य धाम की प्राप्ति होगी, इसीलिए – **"यही है यही है भूलि भरमो न कोऊ"** भ्रम पैदा नहीं करो, यह भ्रम साम्प्रदायिक-कलह से होता है, साम्प्रदायिक भेद से होता है, साम्प्रदायिक भेद से ही भ्रम होता है । इस धाम के बारे में और अच्छी बातें जान लो । 'अहीर' की जाति में जन्म लेने का कारण यही है कि हम गोपी बन जायेंगी और गोपी बनने के बाद श्रीकृष्ण दधि दान लेने के लिए बरसाने में आयेंगे तथा साँकरी खोर में पकड़कर हमें झकझोरेंगे एवं कहेंगे कि 'दान क्यों नहीं दे रही है ?'

ब्रज के दान मिस ब्रज की बीथिन माँहि,
झकझोरनि अंग-अंग को परसिबो ।

मुझे झकझोर कर नन्दलाल मेरी दही की मटकी छीनेंगे । युगों-युगों से जिस महारास की आराधना की जाती है, वह धाम में रहने पर अपने-आप मिलेगा ।

सद्योगीन्द्र सुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैक सन्मूर्तयः
सर्वेऽप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने सङ्गताः ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्च ये
सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६४)

जो लोग अपने कर्मों से इतने गिर हुए हैं, वे भी अगर निष्ठा से इस धाम का सेवन करते हैं तो कितने ऊपर पहुँच जाते है । 'सद्योगीन्द्र सुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन्मूर्तयः' बड़े-बड़े योगीन्द्रों के समान आनन्दैकमूर्ति बन जाते हैं, उनका शरीर रसमय बन जाता है । 'सर्वेऽप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने सङ्गताः' इस वृन्दावनरज में निवास करने से सबको यह चीज मिलती है । सबको कैसे मिलती है – 'ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्च ये' धाम में जो क्रूर लोग हैं, पापी लोग हैं, सन्तों से बोलने योग्य नहीं हैं, देखने योग्य नहीं हैं । 'सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम' उनको उसी रूप में देखते हुए, हिंसापरायण होते हुए देखकर भी हमारी स्वाराध्य-बुद्धि हो जाये, इसलिए ग्रन्थों में सबसे पहले धाम महिमा बतायी गयी है । चाहे किसी भी सम्प्रदाय में चले जाओ, चाहे किसी आचार्य के पास चले जाओ, सबसे पहले वह तुमको धाम महिमा सुनायेगा । इसी श्लोक -२६४ की टीका में रसकुल्याकार लिखते हैं – 'अरे भाई ! जिसकी निष्ठा है, आराधना कर रहा है, उसको भी प्राप्ति अवश्य होगी, वह अपनी भावना से स्थापना कर रहा है कि यह वही स्थान है, यह वही है । इस प्रकार नित्य स्थापना करने से वह सिद्ध हो जाएगा । स्वतः धाम उस पर कृपा करेगा । दूसरा व्यक्ति जिसमें आराधना की शक्ति नहीं है, जिसके भीतर शरीर सम्बन्धी भेद है, उसको भी यहाँ की स्वाराध्यता, यहाँ आवास करना अवश्य फल देगा । तीसरे वे व्यक्ति हैं, जो धाम के बाहर भी आते-जाते हैं, जिनमें धाम निष्ठा नहीं है, उनको भी सिद्धान्त के बल से, जिसको स्थापना बल कहते हैं, वह यह है कि ये हमारे परम स्वाराध्य हैं, ऐसा अगर तुम्हारा भाव है तो अवश्य तुमको धाम की प्राप्ति होगी । यानी घबराओ नहीं, तुम बाहर जाते हो या किसी कारण से तुमको धाम के बाहर रहना पड़ा, जैसे बेचारे कुछ लोग परिवार के पालन के लिए, नौकरी करने के लिए धाम के बाहर जाते हैं । ये तीसरी कोटि में आते हैं । पहली कोटि

में वे हैं, जो स्वयं अपने मन में स्थापना करते हैं कि 'धाम' हमारा परम सिद्ध देव है । दूसरी कोटि के लोग शारीरिक भेदभाव की दृष्टि से स्थापना नहीं कर पाए किन्तु किसी न किसी अंश में स्थापना तो नहीं हो पायी परन्तु निरन्तर प्रयत्नशील हैं कि यह वही धाम है, वही धाम है । तीसरे वे हैं, जो धाम के बाहर भी आते-जाते हैं, वे भी स्थापना करते हैं, उनको भी मिलेगा ।' इसीलिए रसकुल्याकार ने निर्णय कर दिया है । रसकुल्या राधासुधानिधि की विश्व की सबसे प्रसिद्ध टीका है । इसमें निर्णय कर दिया गया कि तीनों पर धाम कृपा करेगा । स्थापना बल वाले यहाँ निरन्तर रहते हैं, दूसरे वे हैं, जिनमें स्थापना बल नहीं है किन्तु इस धाम को आराध्य मानते हैं, तीसरी कोटि में वे लोग आते हैं, जो कहते हैं – महाराज ! हम क्या करें, हमारी नौकरी है, हम गृहस्थ-संसारी लोग हैं, हमारी जीविका तो धाम के बाहर ही है, हम क्या करें तो रसकुल्याकार बोले और राधासुधानिधि में भी स्पष्ट कह दिया गया है – चाहे तुम पापात्मा हो, चाहे तुमने इतने पाप किये हैं कि तुम संतों से बोल नहीं सकते, सन्तों के दर्शन नहीं कर सकते तो तुमको भी वह वस्तु मिलेगी । इस प्रकार से श्रद्धा का भेद हो जाता है । उत्तम तो यह है कि स्थापना बल पर पहुँचो, दूसरा वह है कि भेद आदि रहते हुए भी आराधना करो, तीसरा है कि तुम आराधना भी नहीं कर पाए, धाम के बाहर जाना पड़ा किन्तु हृदय में भाव रखो तो तुम्हें भी वस्तु मिलेगी ।

इस प्रकार धाम की उपासना के सम्बन्ध में ये तीन बातें बतायी गयीं । श्रीकृष्ण लीला नित्य है । सदा से होती आई है और सदा-सर्वदा होती रहेगी । इसका प्रमाण श्रीमद्भागवत है । जब नारदजी ने ध्रुव को उपदेश दिया था तो उन्होंने कहा था – **तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि । पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः ॥** (श्रीभागवतजी ४/८/४२) हे तात ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम यमुना तट स्थित मधुवन में चले जाओ, जहाँ भगवान् का नित्य सानिध्य है । कल्प आते हैं, चले जाते हैं । काल निरन्तर गतिशील बना रहता है किन्तु ब्रजभूमि की यह महिमा है – **'यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः'** – यहाँ भगवान् का नित्य सानिध्य बना रहता है, यह भागवत का प्रमाण है । इसीलिए नारदजी ने ध्रुवजी को कानपुर के निकट स्थित गंगा तटवर्ती बिठूर से यमुनातटवर्ती मधुवन (ब्रज) में भेजा था क्योंकि नारदजी चाहते थे कि इस बालक को शीघ्र ही भगवत्प्राप्ति हो जाए और शीघ्र भगवत्प्राप्ति के लिए ही यह त्रिलोकपावनी ब्रज-वसुन्धरा है । नारदजी ने ध्रुवजी से यह भी कहा था कि भगवान् के अनन्त अवतार, अनन्त लीलायें हैं परन्तु ब्रज-धरा पहुँचने पर तुम श्रीकृष्ण लीलाओं को गाना – (श्रीभागवतजी ४/८/५७) उन श्रीकृष्णचरित्रों का गान करना, जिन्हें वे करेंगे; 'करेंगे' इसलिए कहा क्योंकि उस समय तक श्रीकृष्ण का अवतरण नहीं हुआ था ।

ब्रह्म होने के बाद (योगी) फिर मेरी भक्ति प्राप्त करता है । इसलिए ब्रह्म तो सर्वत्र है ही, साधक उसमें लीन हो जाता है, इसको सद्योमुक्ति कहते हैं । क्रममुक्ति उसको कहते हैं जैसे सूर्य स्थानीय अर्थात् सूर्य और उसका प्रकाश है । सूर्य का प्रकाश हमें पृथ्वी पर भी मिल रहा है परन्तु सूर्य जो प्रकाश का केन्द्रबिन्दु है, उसके पास पहुँचने के लिए हमें बहुत क्रम से चलना होगा और तब हम सूर्य के पास पहुँचेंगे ।

'आराधना' से धाम-शक्ति का जागरण

'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' में बाबाश्री द्वारा कथित सत्संग (१७/११/२०१३) से संकलित

श्रीकृष्ण इतने सरल हैं कि ब्रज के गाँवों में गँवार बन जाते हैं, जिनके चरणकमलों की सेवा स्वयं वैकुण्ठ की अधीश्वरी लक्ष्मीजी किया करती हैं । ब्रज में श्रीकृष्ण की इतनी सरल लीलायें हैं कि वे भगवान् अनन्त हैं, आज तक उनको कोई बाँध नहीं पाया परन्तु उन अनन्त भगवान् को यशोदा मैया ने रस्सी से बाँध दिया –

"कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने" (श्रीभागवतजी १०/९/१८)

प्रेमरसमयी ब्रजभूमि में 'भगवान्' भी अपनी भगवत्ता को भूलकर अत्यन्त सहज-सरल स्वभावमय बन जाते हैं –

"रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ।" (श्रीभागवतजी १०/१५/१९)

यहाँ 'ग्राम्यैः' शब्द का अर्थ है गँवारों का साथ । प्रेमभूमि ब्रज में अनन्त महिमाशाली भगवान् गँवारों के साथ ग्रामीण चेष्टायें करता है अर्थात् स्वयं भी गँवार बन जाता है, चोरी करता है, ग्वालबालों का उच्छिष्ट (जूठन) खाता है । इस प्रकार जितनी भी गँवारपने की लीलायें भगवान् करता है तो कहाँ करता है ? जिस स्थली पर ऐसी मधुरातिमधुर रसमयी-प्रेममयी लीलायें करता है, उसी सुरमुनि वन्दित पावन धरा का नाम है ब्रज । जिस भगवान् के बारे में उपरोक्त श्लोक में कहा गया है – **'रमालालितपाद पल्लव'** लक्ष्मीजी उसके चरणों को दबाती नहीं हैं, लालन करती हैं, सहलाती हैं, वे भगवान् इस तरह प्रीतिपूर्वक चरण संवाहन करने वाली लक्ष्मीजी का त्यागकर ब्रज में गँवारों के साथ रमण कर रहे हैं । श्रीवृन्दावन महिमामृत शतक के रचयिता श्रीपाद प्रबोधानन्दजी ने अपने ग्रन्थ में बताया है कि यह ब्रज वृन्दावन धाम कैसा है ? 'श्रीमद्वृन्दावनभुविमहानन्दसाम्राज्यकन्दे' – परमानन्द, महा आनन्द के साम्राज्य का मूल है यह ब्रज । 'वन्दे यं कञ्चन विरचिता मृत्युवास प्रतिज्ञम्' – उसकी हम वन्दना करते हैं, जो यहाँ निष्ठापूर्वक निवास करता है, निष्ठा वाला ब्रजभक्त इसी ब्रजभूमि में अपना जीवन समाप्त करता है । हजारों-लाखों लोगों में कोई एक ही ब्रज के प्रति ऐसा आस्थावान होता है, जो इस प्रकार मृत्युपर्यन्त अखण्ड ब्रजवास करता है । हमारे सामने जो ब्रज दिखायी पड़ता है, उसमें तो मिट्टी ही मिट्टी है; यहाँ स्थान-स्थान पर मल-मूत्र का प्रदूषण भी दिखायी पड़ता है । यहाँ ऐसा क्या है, जो एक दृढ़ निष्ठायुक्त ब्रजभक्त मृत्यु वास की प्रतिज्ञा लेकर यहाँ रह रहा है । वृन्दावन शतककार प्रबोधानन्दजी कहते हैं कि स्थूल दृष्टि से दिखने वाले इस भौम वृन्दावन में ऐसी शक्ति है कि यहाँ पर नित्य धाम का अवतार होता है । जिस प्रकार भगवान् का अवतार होता है, उसी प्रकार धाम का भी अवतार होता है । ऐसा क्यों होता है तो इसका कारण यही है कि जिस प्रकार भयंकर भवाटवी में भटकते हुए पतितात्माओं पर अनन्त करुणावरुणालय भगवान् कृपावश धराधाम पर अवतरित होते हैं, ठीक इसी प्रकार धाम का अवतरण भी दारुण भवसिन्धु में गोता खा रहे मायाबद्ध जीवों पर कृपा करने के लिए होता है । जो लोग ब्रजधाम में आते हैं और मौजमस्ती करके अथवा तफरी करके चले जाते हैं, उनकी बात अलग है, अन्यथा जो लोग यहाँ निष्ठापूर्वक अखण्ड वास करते हैं, उनके बारे में

वृन्दावन शतककार लिखते हैं – **श्रीमद् वृन्दावन भुवि महानन्द साम्राज्य कन्दे वन्दे यं कञ्चन विरचिता मृत्युवास प्रतिज्ञम् । श्रीगान्धर्वारसिकतिलकौ स्वेषु योग्यं यमेकम् ज्ञात्वान्योन्यं विमृशत इदं कीदृशोन्वेष भाव्यः ॥**

(श्रीवृन्दावनमहिमामृतम् - ६/३५)

'गान्धर्वा' का अर्थ है - श्रीराधारानी, 'रसिकतिलकौ' का अर्थ है - श्रीकृष्ण । जब ये दोनों युगल सरकार बैठते हैं तो मृत्युपर्यन्त अखण्ड ब्रजवास की प्रतिज्ञा लेकर यहाँ रहने वाले उस दृढ़निष्ठ ब्रजभक्त की परस्पर चर्चा करते हैं और कहते हैं कि वह अनन्य भक्त जो हमारे धाम में पड़ा हुआ है, जिसने अपना जीवन धाम के लिए समर्पित कर दिया, उसका क्या हाल-चाल है ? भगवान् की शरणागति, धाम की शरणागति एक ही है । नाम, धाम, रूप, गुण, लीला, जन, धामी – ये सातों तत्त्व एक ही हैं । नामनिष्ठ हो जाओ, तब भी वही फल मिलेगा, रूपनिष्ठ हो जाओ, लीलानिष्ठ हो जाओ, जननिष्ठ हो जाओ अथवा धामनिष्ठ हो जाओ, इन सबका समान महत्त्व है । इसलिए राधारानी और श्यामसुन्दर जब एकान्त निकुञ्ज में बैठते हैं तो परस्पर वार्तालाप करते हैं, एक दूसरे से विचार करते हैं – राधारानी श्यामसुन्दर से पूछती हैं – 'हे प्यारे ! वह अनन्य ब्रजभक्त, जो हमारे धाम का आश्रय लेकर यहाँ निवास कर रहा है, उसका समाचार मुझे सुनाओ ।' कभी श्यामसुन्दर राधारानी से पूछते हैं – 'हे राधे ! वह जो तुम्हारे धाम में पड़ा हुआ है, क्या तुमको उसकी सुध है ?' श्रीजी कहती हैं – 'हाँ ! मुझे उसकी सुध है ।' धाम में निवास करने का यह फल होता है । इसी प्रकार नामनिष्ठ का यह फल होता है – "**सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें । आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ॥**"

रूप नहीं देखा है किन्तु नाम का स्मरण करो तो उस रूप का आविर्भाव हो जाएगा । अब यह विचार करना चाहिए कि इस धाम में काँटे दिखायी देते हैं, कंकड़ दिखायी देते हैं, गली-गली में मल-मूत्र दिखायी पड़ता है तो हम यहाँ श्रद्धा कैसे करें ? यह प्रश्न हमारे समक्ष है । यहाँ चोर-जेबकतरे दिखायी पड़ते हैं, दुराचारी लोग भी दिखायी पड़ते हैं, ऐसी स्थिति में हम धाम के प्रति श्रद्धा कैसे करें ? इसका उत्तर यही है कि ठीक है, धाम में विकृतियाँ दिखायी पड़ती हैं, परन्तु यह हमारी आँखों का ही दोष है, जो हमें धाम में दूषण और दूषित प्रकृति के लोग दिखायी देते हैं, अन्यथा महान ब्रजनिष्ठ सन्त ध्रुवदासजी ने कहा है –

"प्रगट जगत में जगमगै वृन्दा विपिन अनूप ।
नयन अछत दीखे नहीं यह माया को रूप ॥"

नेत्रों की स्थूल दृष्टि होने के कारण हमें धाम का वास्तविक स्वरूप दिखायी नहीं पड़ता है क्योंकि नेत्रों में माया का आवरण है । यह आवरण कब हटता है ? यह कृपा से हटता है । कृपा कब होती है ? जब अहंता-ममता चली जाती है । एक अन्य प्रमाण यह है कि चित्रकूट में जब भरतजी भगवान् राम से मिलने के लिए गये तो उन्होंने रामजी को वन से अयोध्या वापस लाने का प्रयत्न किया परन्तु रामजी लौटे नहीं । उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं तो पिताजी की आज्ञा से वन में ही निवासकर चौदह वर्षों के पश्चात् ही अयोध्या आऊँगा । उसी प्रसंग में भरतजी ने वहाँ धामोपासना की । धामोपासना क्या है, यह कैसे प्रकट होती है, इसे ध्यानपूर्वक समझें । भरतजी ने कहा कि मुझे चित्रकूट धाम की परिक्रमा करनी है । चित्रकूट भी राम

लीला का स्थल और धाम है । जितने भी धाम हैं, ये भगवान् की इच्छा से ही अवतरित होते हैं । क्यों अवतरित होते हैं ? जीवों के कल्याण के लिए ही भगवदिच्छा से इनका अवतरण होता है । जैसे भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं जीवों के कल्याण के लिए । भगवन्नाम क्यों प्रकट होता है, जीवों पर दया करके भीषण भवसागर से उनको उबारने के लिए ही हरिनाम का प्राकट्य होता है । इसी प्रकार भगवान् की इच्छा से जीवों पर दया-कृपा की वर्षा हेतु ही धाम का भी अवतरण होता है । जो भक्त हैं, वे धाम के प्रति भाव रखते हैं । जो भक्त नहीं हैं, वे धाम के प्रति कोई भाव नहीं रखते हैं । धाम के प्रति भाव का उदय कैसे होगा ? धाम के उपासकों के साथ यदि रहा जाये, उनका संसर्ग किया जाये तो धाम की भक्ति अवश्य ही उत्पन्न होगी, अन्यथा नहीं होगी, धाम के प्रति प्राकृत भाव ही बना रहेगा । भरतजी की चित्रकूट की परिक्रमा के प्रति उत्कट लालसा को देखकर श्रीरामजी ने सहर्ष ही उनका अनुमोदन किया, अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी । जब भरतजी चित्रकूट की परिक्रमा को चले तो उनका समस्त परिवार और सम्पूर्ण अयोध्यावासी, जो उनके साथ आये थे, वे भी उनके साथ ही परिक्रमा के लिए चल दिये । उस समय चित्रकूट सघन अरण्य (घनघोर जंगल) था । वहाँ के वातावरण का गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस चौपाई में सटीक चित्रांकन किया है – **"कुस कंटक कांकरी कुराई । कटुक कुवस्तु कठोर दुराई ॥"** जंगल में कुशा थे, जो पाँव में गड़ जाते हैं; काँटे थे, कंकड़ियाँ थीं, जो पाँवों में चुभ जाती हैं और कष्टदायक होती हैं । 'कुराई' अर्थात् ख़राब रास्ते थे, घने जंगलों में रास्ता भूल जाने पर राहगीर को बहुत भटकना पड़ता है । (ब्रज में आने से पहले चित्रकूट प्रवास के दौरान पूज्य श्रीबाबामहाराज को भी एक बार वहाँ मार्ग भूल जाने पर ददरी के जंगल में रात भर बहुत भटकना पड़ा था । लोग कहते थे कि वहाँ सिंहों का बहुत अधिक भय था । अतः एक जगह छिपकर श्रीबाबा महाराज को रात बितानी पड़ी थी । सबेरा होने पर उन्होंने देखा कि हिरन भाग रहे थे और एक सिंह उनका पीछा कर रहा था ।) कुराई 'ख़राब रास्तों' का यह दुष्परिणाम होता है कि मनुष्य अपने मार्ग से भटक जाता है । जंगल में कटुक वस्तुएँ जैसे किवाच आदि होती हैं । किवाच का यदि शरीर से स्पर्श हो जाये तो खुजली उत्पन्न कर देगी । कुवस्तु का अर्थ है कि जंगल में दूषित वस्तुएँ मल-मूत्र आदि भी स्थान-स्थान पर पड़े होते हैं । कठोर वस्तुएँ जैसे हड्डियाँ भी जंगलों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी रहती हैं । भरतजी द्वारा भाव सहित चित्रकूट धाम की परिक्रमा किये जाने पर वहाँ की धरती ने इन अशुभ, अपवित्र और कष्टप्रद वस्तुओं को छिपा लिया । यह धाम उपासना का ही फल था कि बाधायें आयीं किन्तु धाम की चमत्कारिक शक्ति ने उनको छिपा दिया । काँटे फूल बन गये, कंकड़ियाँ, कुराई, कटुक वस्तुएँ और मल-मूत्र आदि लुप्त हो गये एवं पृथ्वी पर सुन्दर मार्ग का प्राकट्य हो गया ।

महाकवि भवभूति की भविष्य वाणी –'उत्पत्स्यते तु मम कोऽपि समानधर्मा ।कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥' ऐसी पावन परम्परा में, संसार प्रवास की स्वल्पावधि में विपुल लोकोपकार करने वाले इन महापुरुष का अवतरण भी किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही हुआ है । रस-सिद्ध-संतों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पायी । श्रीजी की यह गह्वर वाटिका जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है ।

'गौ-सेवा' से संस्कृति-संरक्षण

श्रीकृष्ण के अवतार से न केवल भारत की प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व की रक्षा हुई थी । गोपियाँ कहती हैं –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् । त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ (श्रीभागवतजी १०/३१/१८)

कृष्ण ! तुम्हारे आने से विश्वमंगल हुआ । कैसे ? तुमने गौ-सेवा की । 'गोपालक' ही 'गोपाल का बालक' है । सम्पूर्ण संसार जानता है कि गवामृत से शुद्ध बुद्धि, पवित्र चरित्र का निर्माण होता है । बुद्धि यदि शुद्ध है तो 'राग-द्वेष, कलह-विषाद' स्वतः संसार से नष्ट हो जाएँ, प्रेम का संचार हो जाए । यदि आज अनाद्या-अवध्या 'गौ' का वध बंद हो जाए तो भारतवर्ष सशक्त व स्वराट् बन जाए । 'गो-गोपाल' के सेवक का कदापि कोई अभद्र नहीं हो सकता है । किसने नहीं की गौसेवा ? विधि-हरि-हर ने स्वयं गौ-स्तवन किया । महदपराध होने पर ऋषियों से शप्त होकर शिवजी ने गोलोक जाकर सुरभि का स्तवन किया । सुरभि ने स्नेहपूर्वक शिवजी को गर्भस्थ कर लिया । देवगणों ने ढूँढते हुए गोलोक में स्थित सुरभि से प्रार्थना की, तब सुरभि ने एक वत्स को जन्म दिया जो नीलवृषभ बोले गए; यही पंचानन थे । श्रीरामजी के जन्म के पूर्व महाराज दशरथजी ने दस लाख गायों का दान किया – **"गवां शत सहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृप"** (वाल्मीकि रामायण १/१४/५०) इस गौदान से अग्निदेव यज्ञ में प्रसाद लेकर प्रकट हुए । श्रीराम-जन्मावतार के बाद पुनः महाराज दशरथजी ने बहुसंख्यक गौदान किया – **"हाटक धेनु बसन मनि, नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ।"** (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - १९३)

पुनः विवाहावसर पर चार लाख गायों का दान किया – **"गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः"**

(वाल्मीकि रामायण १/७२/२३)

चारि लच्छ बर धेनु मगाईं । काम सुरभि सम सील सुहाईं ॥ (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड -३३१)

फिर वनयात्राकाल में भी गौदान किया –

"बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार"

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १९२)

'गौ-रक्षक' रामभक्त है, 'गौ-नाशक' रावण का वंशज है क्योंकि रावण का आदेश था –

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ॥ (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १८३)

राज्याभिषेक के अवसर पर राम जी ने एक लाख पयस्विनी गायों का दान किया । मानस जी में मिलता है राम जी ने करोड़ों अश्वमेघ यज्ञ किए –

"कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे ।"

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड –२४)

वे यज्ञ बिना गवामृत के नहीं होते थे । गौ यज्ञ का मूल है । अतः श्रीरामजी की राजकीय गौशालाओं में असंख्य गायों की सेवा होती थी और तब वे मनोवांछित दुग्ध देती थीं । उपरोक्त में उल्लिखित है कि गौचारण काल में कभी पन्हैया भी नहीं पहनी । कैसी विचित्र है गोपाल की गौ भक्ति ? विशुद्ध भाव से हमें गौसेवा करनी चाहिए । इसके निमित्त प्राप्त धन का दुरूपयोग हमें नारकीयता में ले जायेगा । गाय जब अपने दूध से अपना स्वार्थ नहीं रखती तो हम गौ-सेवा के धन से अपनी स्वार्थपूर्ति करें यह उचित नहीं । **"गावो**

विश्वस्य मातरः" गाय किसी व्यक्ति विशेष की नहीं सम्पूर्ण विश्व की माँ है, अतः सम्पूर्ण राष्ट्र का परम धर्म है - गौवध निवारण व गौसेवा । कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के २/२६ में गौरक्षा पर राजा को पूर्ण रूपेण ध्यान देने का निर्देश किया है । अशोक के शिलालेखों में गौहत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध द्रष्टव्य है । बदाउनी ने लिखा है कि हिन्दुओं तथा जैनियों के प्रभाव से अकबर के राज्य में कोई भी गौवध नहीं कर सकता था । बी.ए. स्मिथ ने अपने इतिहास प्र.-१०१ पर जहाँगीर के विषय में यहाँ तक लिखा है कि वह जान या अनजान में भी गौहत्यारों को फाँसी पर लटकाने में नहीं हिचकता था । महात्मा गाँधी, स्वामी करपात्री जी, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, हनुमानप्रसादपोद्दारजी (भाईजी) ने भी प्रयास किया भारत में पूर्णतः गौवध बन्द कराने का किन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि कुछ अन्धे शासक अपने लाभ को न देख पाने के कारण विनाश की ओर बढ़ रहे हैं, 'गौरक्षक' के नाम पर 'गौभक्षक' बन रहे हैं; ऐसी स्थति में 'पवित्राचार, श्री, ऐश्वर्य एवं शान्ति-स्थापन' देश में कदापि सम्भव नहीं है । जब तक भारत में 'गाय' का आदर था, दूध-दही की नदियाँ बहती थीं, देश में शान्ति थी, देवता भी यहाँ जन्म लेने को लालायित रहते थे । स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी तो केवल घृत पान करने के लिए पुरुरवा के साथ भारत में बहुत दिनों तक रही । राजा मरुत के यज्ञ में देवगण स्वयं परिवेषण कार्य करते थे, विश्वेदेव सदा सभासद बनकर रहते । गौ-सेवक 'गोविन्द' का सर्वाधिक प्रिय बन जाता है, यह तो निश्चित है ही । १० वीं शताब्दी तक भारतवर्ष गौवंश के लिए स्वर्ग की भाँति था । महमूद गजनवी के आक्रमण से (९९ से १०३० ई.) पूर्व मुसलमान सूफी संत भारत में आकर साधन करने लगे थे । गाय को बड़ा आदर देते थे । बाबर (१५२६ से १५३०) की दूरदर्शिता ने बहुसंख्यक समाज की इस बद्धमूल भावना को परखा । इस्लाम भी इस धर्म के विरुद्ध नहीं अतः भारत में गौहत्या बन्द कराई । अकबर (१५४२-१६०५) ने भी गौवध बन्द करा दिया । १८ वी. शताब्दी से कानून कुछ बदलने लग गए । १९ वी. शताब्दी में माँस भक्षण को स्थायित्व दे दिया विज्ञान ने । इसके लिए गौवध उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगा । १९०५ में गौरक्षा का प्रश्न उठा तो यही कहा गया कि अंग्रेज मांसभक्षी हैं, इन्हें जल्द से जल्द देश से निष्कासित किया जाए । उस समय गाँधी जी ने यहाँ तक कहा – हम स्वतंत्रता के लिए कुछ समय प्रतीक्षा भी कर सकते हैं किन्तु गौहत्या होना हमें एक दिन भी सहन नहीं होगा । आज भारत स्वतन्त्र हो गया किन्तु गौवध बन्द न हुआ । जब भारतीय ही गौवध करेंगे तो इस पर रोकथाम लगाने के लिए इटैलियन या अमरीकी नहीं आयेंगे । 'भारतवर्ष' सोने की चिड़िया व जगद्गुरु था एवं पुनः पूर्ववत् अवश्य होगा क्योंकि भारत जैसी सोना उगलने वाली भूमि अन्यत्र नहीं है ।

"गावो विश्वस्य मातरः" –

वेदों में 'गाय' को सारे संसार की माता कहा गया; ऐसा क्यों कहा गया ? क्योंकि हर व्यक्ति की माँ अलग-अलग होती है – सभी की जन्मदात्री 'जननी' समस्त योनियों में अलग-अलग होती है और वह अपने दूध से अपने शिशु का पोषण करती है । जन्म देने वाली को 'जननी' कहा गया, वह जननी जन्मदात्री होते हुए भी केवल थोड़े दिन ही अपने दूध से शिशु का पोषण करती है, कुछ दिन बाद उसका दूध सूख जाता है और प्राणीमात्र के पोषण के लिए गौमाता का आश्रय

करना पड़ता है, जिसका दूध कभी नहीं सूखता है । मनुष्य-जीवन की अंतिम श्वास तक गौमाता के दूध से पोषण होता है । जन्म देने वाली माँ सदा पोषण नहीं कर सकती है, केवल अपने से उत्पन्न शिशु का पालन थोड़े दिन कर सकती है किन्तु गौमाता संसार के सभी प्राणियों का पोषण करती है । अपनी माता बच्चे से सेवा का भी स्वार्थ रखती है जबकि 'गौमाता' निःस्वार्थ भाव से दूध-दान करती है । ऐसी संसार की जननी 'गौमाता' को मारना अपनी सैकड़ों जननियों से ज्यादा घृणित है, मातृभक्ति की दृष्टि से ही नहीं कृतज्ञता की दृष्टि से भी गौहत्या करना पाप है । अपनी माँ (जन्मदात्री) का मल-मूत्र कभी पूज्य नहीं हो सकता और वह मल रोगकारक और विषाक्त होता है, उसमें घातक रोगाणुओं की भरमार रहती है किन्तु गौमाता का गोबर मल नहीं वरन् श्रेष्ठ है, निर्दूषज है, रोगनाशक है; किसी को खुजली हुई हो गोबर में गोमूत्र मिलाकर लेपकर धूप में बैठ जाओ, सभी खुजली रोग के बैक्टीरिया नष्ट हो जायेंगे । अनुपान के साथ सेवन किया जाए तो विश्व के सभी रोगों पर गौबर-गौमूत्र से उपचार हो सकता है । गोबर से बनी खाद से पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि प्राचीन भारत को सोने की चिड़िया इसलिए कहा जाता था । भारत सोने की चिड़िया था एवं पुनः पूर्ववत् हो सकता है क्योंकि भारत जैसी सोना उगलने वाली अवनि अन्यत्र नहीं हैं । भारतीय सनातन संस्कृति में महापुरुष सदा रहे हैं तभी धर्म की ध्वजा आज तक फहरा रही है । पृथ्वी धरातल पर स्थित है फिर भी समग्र राष्ट्र को गौ भक्ति व भगवद् भक्ति में संलग्न न देखकर हृदय दुःख से द्रवित होता है । इस लेख में गौभक्ति, समाज–संसार के कल्याण की भावना रखी गयी है । विवेकियों द्वारा ही यह सम्मानित होगा, परन्तु इसके विपरीत भावना वालों के लिए तो कबीरदासजी ने कह ही दिया है – "हाथी अपनी गैल चलत है, कुकर भुसत वाको भुसवा दे ।"

ब्रज-गौरवशालिनी 'श्रीमाताजी गौशाला'

५५ हजार से अधिक गायों का मातृवत् पोषण कर रहे पूज्य गुरुदेव श्रीबाबामहाराज का कथन है कि वस्तुतः गाय का पोषण हम नहीं कर रहे वरन् हम स्वयं गाय द्वारा पोषित हो रहे हैं । गौमाता के उपकारों को देखा जाए तो सच में वे अनन्त हैं । गौमाता व गौमूत्र का महत्त्व जान लिया जाए तो केवल गाय ही नहीं बछड़े-बैल जो उपेक्षित हैं, सम्पूर्ण गौवंश इस उपेक्षा से बच जाए । बैल से चलित जनरेटर से विद्युत् शक्ति का घर-घर में उपयोग होगा, बैलों द्वारा अनेक प्रकार की मशीनें चलने से विविध सेवा-कार्यों में सुविधा हो रही है । इसलिए अब गौवंश उपेक्षा से बचेगा । इस उपयोग से विद्युत् शक्ति तो बचेगी ही देश की आर्थिक व्यवस्था में भी डीजल का भार कम हो जाएगा । गौवंश का आधा भाग जिसका उपयोग कुछ नहीं है उसे लोग कटने भेज देते हैं । बछड़े के जन्म से हिन्दू दुःखी हो जाता है । आज 'श्रीमानमंदिर की माताजी गौशाला' में लूली-लंगड़ी, असहाय गौवंश का न केवल पोषण प्रत्युत अखण्ड हरिनाम संकीर्तन द्वारा पूजन भी हो रहा है । सौभाग्य से श्रीमाताजी गौशाला उसी स्थान पर है जहाँ श्रीवृषभानुबाबा की गायें बँधती थीं ।

हममें और एक भक्त में यही अंतर है कि हम भी इस संसार को देखते हैं और एक भक्त भी देखता है किन्तु भक्त सर्वत्र भगवान् की धारणा रखता है तो संसार के इन्ही दृश्यों को देखते हुए भी वह कृष्ण को प्राप्त हो जाता है और हम लोग संसार में भगवान् की धारणा न करके प्राकृत धारणा करते हैं, अतः इस कारण से हमारा आत्मपात हो जाता है ।

रसमण्डप,गह्वरवन में नित्य आराधना, रसिया गायन एवं ब्रजलीलाओं
की सुमधुर प्रस्तुति करती हुई मान मन्दिर की बाल-साध्वियाँ

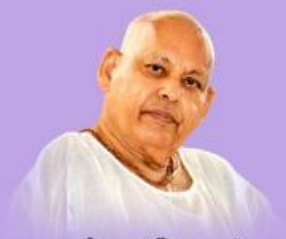

ब्रज के परम विरक्त संत

पूजनीय श्री रमेश बाबा जी महाराज

परम पूज्य संत श्री रमेश बाबा जी महाराज विगत 70 वर्षों से मान मंदिर पर अखंड ब्रजवास कर रहे हैं उन्होंने ब्रजधाम को ही श्री राधाकृष्ण का साक्षात् स्वरूप मान कर ब्रज संस्कृति, ब्रज के पर्यावरण, प्राचीन लीला स्थली, वन, उपवन एवं श्री यमुना जी के संरक्षण - संवर्धन के लिए अपना पूरा जीवन लगा दिया। साथ ही उनका यह भाव है कि ब्रज प्रेम एवं श्रीराधा कृष्ण की भक्ति का पूरे विश्व में प्रचार प्रसार हो जिससे संपूर्ण विश्व के लोगों को कृष्ण प्रेम से जोड़ा जा सके।

आइए हम सब संपूर्ण सृष्टि के आराध्य भगवान कृष्ण की नित्य आराधना स्थली का नव निर्माण करें।

राधे किशोरी दया करो

श्री मान मंदिर के जीर्णोद्धार की तकनीक सनातन परंपरा पर आधारित है

मूलाच्छतगुणं पुण्यं प्राप्नुयाज्जीर्णकारकः
तस्तमात्सर्वप्रयत्नेन जीर्णस्योद्धारमाचरेत्

देवी भागवत

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान अपना हर कार्य परम पूज्य श्री रमेश बाबा महाराज जी की प्रेरणा व उनके ही सत्संकल्प अनुसार सेवारत है।

युगल सरकार श्री राधा कृष्ण की नित्य लीला स्थली मानमंदिर का जीर्णोद्धार भी उन्हीं सत्प्रयासों में से एक है जिससे ब्रज की एक अत्यंत विलक्षण लीला स्थल का पुनरुद्धार किया जा रहा है।

यह है सम्पूर्ण सृष्टि के आराध्य की नित्य आराधना स्थली के निर्माण का परम पुनीत कार्य !

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान के लिए ब्रज सेवा और भगवान कृष्ण की सेवा में कोई अंतर नहीं है।

हम ब्रज संस्कृति, ब्रज के पर्यावरण, पर्वत, कुंड वन-उपवन आदि के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सदैव तत्पर, प्रयत्नशील और कर्मशील है।

हमारे आज तक के सारे कार्य केवल भक्ति और ब्रजधाम की सेवा के लिए ही समर्पित रहे है।

श्रीमानमंदिर द्वारा किए जा रहे सेवा कार्य

ब्रज के अति पावन 6000 हेक्टेयर पहाड़ो पर विनाशकारी खनन के विरुद्ध ऐतिहासिक आंदोलन और उन्हें रिजर्व फॉरेस्ट घोषित कराने में पूर्ण विजय प्राप्त की गई। अब ये सभी पर्वत अनंत काल के लिए सुरक्षित हो गए है।

ब्रज के 32 से अधिक पवित्र कुण्डों का संरक्षण और जीर्णोद्धार का कार्य सम्पन्न किया गया।

ब्रज के उजड़े वन क्षेत्रों में 2 लाख से अधिक वृक्षारोपण और ब्रज के कई प्राचीन वन फिर से जीवंत किए गए।

विगत २० वर्षों से यमुना नदी के तल पर यमुना जल के निर्मल व अविरल प्रवाह हेतु कई बड़े कार्यक्रम एवं आंदोलन आयोजित किए गए।

बरसाना स्थित ब्रज-वृन्दावन की सबसे बड़ी गौशाला श्रीमाताजी गौशाला, मानमंदिर द्वारा संचालित है जहाँ 55000 से अधिक गायों की मातृवत् सेवा हो रही है। ये वे गायें है जो कटने जा रही थी, उनकी रक्षा की गई जिनमें अधिकांश दुर्बल, बीमार, अपाहिज, दुर्घटना ग्रस्त, मृतप्राय और दूध न देने वाली गायें है।

ब्रज की संस्कृति का संरक्षण करने वाली सर्वाधिक लोकप्रिय और विशाल श्रीराधारानी वार्षिक ब्रज 84 कोस परिक्रमा जिसमें 15000 भक्त हर वर्ष पदयात्रा करते है। यह 40 दिवसीय भक्ति और रसमयी यात्रा पूर्णतया निःशुल्क है।

मानमंदिर के संतों व साध्वियों द्वारा ब्रज में वृहद स्तर पर भक्ति का प्रचार प्रसार कर समाज को जाग्रत किया जा रहा है।

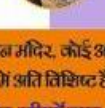

25 हजार से अधिक गांवों में प्रभात फेरी का सफल संचालन किया जा रहा है।

देश विदेश में निःशुल्क भागवत कथा, कीर्तन, ब्रज सम्मेलन आदि का संचालन कर निर्बाध रूप से कृष्णभक्ति व भारतीय आध्यात्मिकता का प्रचार प्रसार किया जा रहा है।

संस्थान द्वारा कई वर्षों से निःशुल्क विद्यालय, चिकित्सालय, गुरुकुल, आध्यात्मिक साहित्य का वितरण, हजारों भक्तों के लिए प्रतिदिन निःशुल्क भंडारा आदि का संचालन किया जा रहा है।

जहाँ जहाँ संतों ने भगवान की आराधना की है, उन्हें मनाया है,
वह वह स्थल अनंत काल के लिए दिव्य बन गये, नित्य धाम बन गये।
विचार करें कि जिस स्थल पर स्वयं लीलापुरुषोत्तम, अखिल ब्रह्मांड नायक भगवान श्रीकृष्ण
अपनी इष्ट राधा रानी की आराधना करते हैं, उन्हें मनाते हैं, उन्हें रिझाने के लिए कई कौतुक भरी चेष्टाएँ करते हैं, वह दिव्य स्थान कैसा होगा

पूरी सृष्टि में ऐसा सर्वोत्कृष्ट स्थल है

श्रीधामबरसाना, ब्रज स्थित मान लीला स्थल – 'मानमंदिर'

जहां जगदीश्वर अपनी आराध्या की नित्य उपासना करता है!

मान लीला स्थल - मान मंदिर, कोई आश्रम या संस्था विशेष स्थल नहीं अपितु श्री राधा कृष्ण की नित्य लीला स्थली में अति विशिष्ट है। यह है सम्पूर्ण सृष्टि के आराध्य का आराधना स्थल !

मंदिर जीर्णोद्धार के इस परम पुनीत कार्य में अपना यथासंभव योगदान देकर अनंत पुण्य के भागी बनें

संपर्क 9927338666
www.maanmandir.org
YOUTUBE/maanmandir
(नित्य लाइव सत्संग)

ACCOUNT NAME
SHRI MAAN BIHARI LAL MANDIR SEVA
ACCOUNT NUMBER: 59109927338666
IFSC CODE: HDFC0000268
BANK: HDFC BANK LTD
BRANCH: BSA COLLEGE, MATHURA

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2021-2023

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52 से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संसथान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित [**AGRA/WPP-12/2021-2023 AT 22.12.23**]